दुनिया के मज़दूरो, एक हो!

व्ला० इ० लेनिन

साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की चरम अवस्था[1]

एक सरल सुबोध रूपरेखा

विदेशी भाषा प्रकाशन गृह

मास्को

Accession No. 159869
Shantarakshita Library
Tibetan Institute-Sarnath

विषय-सूची

पृष्ठ

भूमिका ५

फ़ांसीसी और जर्मन संस्करणों की भूमिका. ७

१ . . . . ७

२ . . . . ८

३ . . . . १०

४ . . . . ११

५ . . . . १२

१. उत्पादन का संकेंद्रण और इजारेदारियां. १६

२. बैंक और उनकी नयी भूमिका ३८

३. वित्तीय पूंजी तथा वित्तीय अल्पतंत्र ६२

४. पूंजी का निर्यात ८४

५. पूंजीपति संघों के बीच दुनिया का बंटवारा . . ९२

६. बड़ी ताक़तों के बीच दुनिया का बंटवारा . . . १०५

७. साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की एक विशेष अवस्था . १२२

८. पूंजीवाद का परजीवी स्वभाव तथा उसका ह्रास . १४०

९. साम्राज्यवाद की आलोचना १५४

१०. इतिहास में साम्राज्यवाद का स्थान १७५

टिप्पणियां १८५

भूमिका

यह पुस्तक जो पाठकों के सामने प्रस्तुत की जा रही है, १६१६ के वसंत में ज़ूरिच में लिखी गयी थी। वहां पर जिन परिस्थितियों में काम करने के लिए मैं लाचार था उनमें फ़्रांसीसी और अंग्रेज़ी साहित्य की किसी क़दर कमी स्वाभाविक थी और रूसी साहित्य का तो बहुत ही अभाव था। फिर भी साम्राज्यवाद के संबंध में जे० ए० हाबसन की किताब का मैंने बहुत ध्यान से उपयोग किया। अंग्रेज़ी में इस विषय पर यही मुख्य किताब है। मेरी राय में यह किताब ऐसे ही अत्यंत ध्यान से पढ़ने लायक़ है।

यह पुस्तक ज़ारशाही के सेंसर को ध्यान में रखते हुए लिखी गयी थी। इसलिए न केवल मुझे तथ्यों के बिल्कुल सैद्धान्तिक, और मुख्यतया आर्थिक विश्लेषण तक ही अपने आपको सीमित रखना पड़ा, बल्कि राजनीति के सम्बन्ध में जो कुछ आवश्यक बातें कहनी थीं, उन्हें भी बहुत ही सावधानी के साथ, इशारों के द्वारा, रूपक की भाषा में – ईसप की कहानियों की – उस अभिशप्त भाषा में – लिखना पड़ा है, अपनी "क़ानूनी" चीज़ें लिखते समय जिसका सहारा लेने के लिए ज़ारशाही ने तमाम क्रान्तिकारियों को मजबूर कर दिया था।

आज़ादी के इन दिनों में पुस्तिका के इन वाक्यों को पढ़ने में बड़ा कष्ट होता है जो सेंसर के कारण विकृत हो गये हैं, घुट गये हैं, मानो किसी लोहे के शिकंजे में वे कुचल दिये गये हैं। साम्राज्यवाद समाजवादी क्रांति की पूर्व-वेला है, सामाजिक-अंधराष्ट्रवाद (बातें समाजवादी करना और काम अंधराष्ट्रवादी) समाजवाद के साथ गहरा विश्वासघात करना, पूंजीवादी

वर्ग से पूरी तरह मिल जाना है; मज़दूर आन्दोलन में यह फूट साम्राज्यवाद की वस्तुगत परिस्थितियों के साथ किस प्रकार जुड़ी हुई है, आदि प्रश्नों पर मुझे बहुत ही "दबी" हुई भाषा में बात कहनी पड़ी थी और जो पाठक इस विषय में दिलचस्पी रखते हैं उनसे मैं अनुरोध करूंगा कि वे १९१४-१७ में विदेशों में लिखे गये मेरे लेखों को नये संस्करण में पढ़ें जो शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। पृष्ठ ११९-१२० के एक उद्धरण की ओर विशेष रूप से ध्यान दिलाना ज़रूरी है।* पाठकों को यह बताने के लिए, और ऐसे रूप में जिसे सेंसर स्वीकार कर ले, कि दूसरे देशों को हड़प लेने के प्रश्न पर पूंजीवादी और उनमें जाकर मिल जानेवाले सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी (जिनका विरोध कौत्स्की इतने ढीले-ढाले ढंग से करते हैं) कितनी बेशर्मी से झूठ बोलते हैं; यह दिखलाने के लिए कि **अपने** पूंजीपतियों द्वारा दूसरे देशों को हड़प लेने की बात पर ये लोग कितनी निर्लज्जता से **पर्दा डालते हैं**, मुझे ... जापान का उदाहरण लेना पड़ा था! सावधान पाठक आसानी से जापान के स्थान पर रूस समझ लेगा और कोरिया के स्थान पर वह फ़िनलैंड, पोलैंड, कूरलैंड, उक्रइन, ख़िवा, बुख़ारा, एस्तोनिया या ऐसे ही दूसरे किसी प्रदेश को समझ लेगा जहां महान् रूसी इतर जातियां रहती हैं।

मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों को बुनियादी आर्थिक प्रश्न को, अर्थात् साम्राज्यवाद के मूल आर्थिक सार के प्रश्न को समझने में मदद देगी, क्योंकि जब तक इस प्रश्न का अध्ययन नहीं किया जाता तब तक वर्तमान युद्ध और वर्तमान राजनीति को समझना और उसका ठीक-ठीक मूल्यांकन करना भी असंभव होगा।

पेत्रोग्राद, लेखक

२६ अप्रैल, १९१७

---

*देखिये इस पुस्तक के पृष्ठ १७४-१७५। —सं०

फ़्रांसीसी और जर्मन संस्करणों की भूमिका[2]

१

जैसा कि रूसी संस्करण की भूमिका में बताया गया था, यह पुस्तक १९१६ में ज़ारशाही के सेंसर को ध्यान में रखकर लिखी गयी थी। इस समय मैं पूरी पुस्तक का संशोधन नहीं कर सकता और न शायद यह ज़रूरी ही है, क्योंकि इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य उस समय भी यही था और आज भी है, कि अकाट्य पूंजीवादी आंकड़ों के संक्षिप्त परिणामों और तमाम देशों के पूंजीवादी विद्वानों द्वारा ख़ुद मानी हुई बातों के आधार पर बीसवीं शताब्दी के शुरू में – पहले साम्राज्यवादी युद्ध की पूर्व-वेला में – विश्व पूंजीवादी व्यवस्था की **पूरी तस्वीर**, उसके तमाम अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के साथ पेश की जाये।

यह पुस्तिका, जो **ज़ारशाही सेंसर की दृष्टि से क़ानूनी थी**, इस दृष्टि से उन्नत पूंजीवादी देशों के अनेक कम्युनिस्टों के लिए कुछ हद तक लाभदायक भी सिद्ध होगी कि कम्युनिस्टों के लिए आज जो भी थोड़ी-बहुत क़ानूनी सुविधा बच रही है – जैसे कि हाल ही में कम्युनिस्टों की सामूहिक गिरफ़्तारियों के बाद वर्तमान अमरीका और फ़्रांस के अन्दर – उसका सामाजिक-शान्तिवादी विचारों और "विश्व जनवाद" की उम्मीदों के निपट खोखलेपन को समझाने के लिए इस्तेमाल करने की संभावना – और ज़रूरत – को वे इस पुस्तक के उदाहरण से समझेंगे। सेंसर की हुई इस किताब में जो कुछ जोड़ना अत्यंत आवश्यक है उसे मैं इस भूमिका में पेश करने की कोशिश करूंगा।

इस पुस्तक में सिद्ध किया गया है कि १९१४-१८ का महायुद्ध दोनों पक्षों की ओर से साम्राज्यवादी युद्ध (यानी दूसरे देशों को हड़पने का, लूटमार और डकैती का युद्ध) था। वह युद्ध दुनिया के बंटवारे के लिए, उपनिवेशों के विभाजन और पुनर्विभाजन के लिए, वित्तीय पूंजी के "प्रभाव क्षेत्रों" आदि के लिए लड़ा गया था।

युद्ध के असली सामाजिक स्वरूप का, बल्कि असली वर्ग-स्वरूप का प्रमाण, स्वाभाविक है, युद्ध के कूटनीतिक इतिहास में नहीं बल्कि युद्ध में शामिल होनेवाले **तमाम** देशों के शासक **वर्गों** की **वस्तुगत** स्थिति के विश्लेषण में मिलता है। इस वस्तुगत स्थिति का चित्रण करने के लिए उदाहरणों या अलग-अलग तथ्यों को नहीं (सामाजिक जीवन की घटनाओं की अत्यधिक जटिलता के कारण उसमें से कितने ही उदाहरणों या अलग-अलग तथ्यों को चुनकर किसी भी बात को सिद्ध किया जा सकता है), बल्कि लड़नेवाले **तमाम** देशों के और **पूरी** दुनिया के आर्थिक जीवन के **आधार** से संबंधित **सम्पूर्ण** तथ्यों को लेना चाहिए।

१८७६ और १९१४ में **दुनिया के बंटवारे** का (छठे अध्याय में), १८९० और १९१३ में सारी दुनिया में **रेलों** के वितरण का (सातवें अध्याय में) वर्णन करने के लिए मैंने ऐसे ही संक्षिप्त अकाट्य तथ्यों को इस्तेमाल किया है। रेलें मूल पूंजीवादी उद्योगों – कोयला, लोहा और इस्पात – का योगफल हैं; योगफल और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और पूंजीवादी-जनवादी सभ्यता के विकास के सबसे स्पष्ट सूचक हैं। पुस्तक के इससे पहले के अध्यायों में मैंने यह दिखाया है कि रेलें किस प्रकार बड़े पैमाने के उद्योगों से, इजारेदारियों, सिंडीकेटों, कार्टेलों, ट्रस्टों, बैंकों और वित्तीय अल्पतन्त्र से संबंधित हैं। रेलों का असमान वितरण, उनका असमान विकास – मानो विश्वव्यापी पैमाने पर आधुनिक इजारेदार पूंजीवाद का निचोड़ है।

और यह निचोड़ इस बात को साबित करता है कि **ऐसी** आर्थिक व्यवस्था के अन्दर, **जब तक** उत्पादन के साधन निजी सम्पत्ति हैं, साम्राज्यवादी युद्धों का होना एकदम अनिवार्य है।

रेलों का बनाना एक सीधा-सादा, स्वाभाविक, जनवादी, सांस्कृतिक तथा सभ्य बनानेवाला काम जान पड़ता है; पूंजीवादी प्रोफ़ेसरों की राय में, जिन्हें पूंजीवादी गुलामी का तड़क-भड़क के साथ वर्णन करने के लिए पैसा दिया जाता है, और निम्न-पूंजीवादी कूपमंडूकों की राय में तो वह ऐसा ही है। किन्तु पूंजीवादी डोरों ने जो इन उद्योगों को हज़ारों विभिन्न गांठों के ज़रिये उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व की आम व्यवस्था से बांधे हुए हैं, रेलों के बनाने के इस काम को (उपनिवेशों और अर्द्ध-उपनिवेशों में) **एक अरब** लोगों के उत्पीड़न का, अर्थात् पराधीन देशों में बसनेवाली पृथ्वी की आधी से ज़्यादा आबादी और "सभ्य" देशों में रहनेवाले पूंजी के मज़दूर-ग़ुलामों के उत्पीड़न का हथियार बना दिया है।

छोटे-छोटे मालिकों की मेहनत पर आधारित निजी सम्पत्ति, मुक्त प्रतियोगिता, जनवाद अर्थात् वे तमाम आकर्षक शब्द जिनके ज़रिये पूंजीपति और उनके अख़बार मज़दूरों और किसानों को धोखा देते हैं—बीते हुए ज़माने की बातें बन चुके हैं। पूंजीवाद आज विकसित होकर कुछ मुट्ठी-भर "आगे बढ़े हुए" देशों द्वारा औपनिवेशिक उत्पीड़न की और वित्तीय दृष्टि से दुनिया की आबादी के विशाल बहुमत का गला घोंटनेवाली विश्वव्यापी व्यवस्था का रूप धारण कर चुका है। और इस "लूट के माल" को दुनिया भर में लूटमार करनेवाले दो-तीन शक्तिशाली लुटेरे (अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन, जापान), जो सिर से पैर तक हथियारों से लैस हैं, आपस में बांट लेते हैं और जो **अपने** लूट के माल के बंटवारे के लिए **अपनी** लड़ाई में सारी दुनिया को घसीट लेते हैं।

राजतंत्रवादी जर्मनी द्वारा लादी गयी ब्रेस्त-लितोव्स्क की शांति-संधि ने, और बाद में अमरीका तथा फ़्रांस के "जनवादी" गणतंत्रों और "स्वाधीन" इंगलैंड द्वारा लादी गयी और भी ज़्यादा पाशविक और घृणित वार्साइ की संधि ने मानव-जाति का बहुत भारी उपकार किया है। इन संधियों ने साम्राज्यवाद के भाड़े के क़लम के कुलियों और प्रतिक्रियावादी कूपमंडूकों दोनों का पर्दाफ़ाश कर दिया है जो अपने-आपको कहते तो शान्तिवादी और समाजवादी थे पर जो "विलसनवाद" की प्रशंसा के गीत गाते थे और ज़ोर देकर कहते थे कि शान्ति और सुधार साम्राज्यवाद के अंतर्गत संभव हैं।

इस युद्ध में, जो सिर्फ़ यह तय करने के लिए लड़ा गया था कि लूट के माल का बड़ा हिस्सा अंग्रेज़ वित्तीय लुटेरों के गिरोह को मिले या जर्मन वित्तीय लुटेरों के गिरोह को, दसियों लाख लोग मारे गये और अपंग हुए और फिर इन दोनों "शान्ति-संधियों" से उन लाखों और करोड़ों लोगों की आंखें बहुत तेज़ी से खुल गयी हैं जो पददलित और पीड़ित हैं, जिन्हें पूंजीपति धोखा देते रहते हैं और ठगते रहते हैं। इस तरह युद्ध के परिणामस्वरूप सब तरफ़ फैली बर्बादी के बीच एक विश्वव्यापी क्रांतिकारी संकट उत्पन्न हो रहा है। इस संकट को चाहे जितनी लम्बी और कठिन मंज़िलों में से गुज़रना पड़े, उसका अंत सर्वहारा क्रांति की सफलता और विजय के अलावा और कुछ नहीं हो सकता।

दूसरी इंटरनेशनल का बैसेल वाला घोषणापत्र जिसने १९१२ में आम तौर पर युद्ध के सम्बन्ध में नहीं (युद्ध तरह-तरह के होते हैं, क्रांतिकारी युद्ध भी होते हैं), बल्कि उसी युद्ध के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये थे जो १९१४ में छेड़ा गया था, दूसरी इंटरनेशनल के सूरमाओं के शर्मनाक दिवालियेपन और ग़द्दारी का एक स्मारक बन गया है।

इसलिए इस घोषणापत्र को मैं इस संस्करण[3] में परिशिष्ट के रूप में दे रहा हूं और पाठकों से मैं फिर कहता हूं कि वे नोट करें कि दूसरी इंटरनेशनल के सूरमा इस घोषणापत्र के कुछ खास अंशों से किस भांति ठीक उसी तरह कतराने की कोशिश कर रहे हैं जिस तरह एक चोर उस जगह से कतराता है जहां पर उसने चोरी की हो! घोषणापत्र के ये अंश वही हैं जिनमें आनेवाले युद्ध और सर्वहारा क्रान्ति के सम्बंध को स्पष्ट, साफ़ और निश्चित बताया गया था।

४

इस पुस्तक में "कौत्स्कीवाद" की आलोचना की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा है जिसका प्रतिनिधित्व करनेवाले दूसरी इंटरनेशनल के "प्रमुखतम सिद्धान्तकार" और नेता (आस्ट्रिया में ओटो बावेर और उनकी मंडली, इंगलैंड में रैमज़े मैकडानल्ड इत्यादि, फ़्रांस में अलबर्ट टामस, इत्यादि-इत्यादि), अनेकों समाजवादी, सुधारवादी, शांतिवादी, पूंजीवादी-जनवादी और पादरी दुनिया के तमाम देशों में मौजूद हैं।

विचारधारा की यह प्रवृत्ति एक ओर तो दूसरी इंटरनेशनल के टूटने-फूटने और पतन का परिणाम है, और दूसरी ओर यह उस निम्न-पूंजीपति वर्ग की विचारधारा का अनिवार्य परिणाम है, जो अपने जीवन की तमाम परिस्थितियों के कारण पूंजीवादी और जनवादी पूर्वाग्रहों के शिकार बने रहते हैं।

कौत्स्की और उनके जैसे लोगों के विचार मार्क्सवाद के उन तमाम क्रांतिकारी सिद्धांतों से मुकर जाना है, जिनका कौत्स्की खुद दसियों वर्ष से समर्थन करते आये हैं, खास तौर से समाजवादी अवसरवाद (बर्न्सटीन, मिलेरां, हिन्दमैन, गोम्पर्स, आदि) के खिलाफ़ अपने संघर्ष में। इसलिए

यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है कि अब दुनिया भर के "कौत्स्कीवादी" व्यावहारिक राजनीति में कट्टर अवसरवादियों के साथ (दूसरी, या पीली इंटरनेशनल के द्वारा) और पूंजीवादी सरकारों के साथ (उन मिली-जुली पूंजीवादी सरकारों के द्वारा जिनमें समाजवादी शामिल होते हैं) मिल गये हैं।

दुनिया के बढ़ते हुए सर्वहारा क्रान्तिकारी आन्दोलन का आम तौर से, और कम्युनिस्ट आन्दोलन का ख़ास तौर से, यह तक़ाज़ा है कि "कौत्स्कीवाद" की सैद्धांतिक ग़लतियों का विश्लेषण किया जाये और उनका पर्दाफ़ाश किया जाये। इस चीज़ की इसलिए और भी ज़रूरत है कि सामान्यतया शांतिवाद और "जनवाद", जो मार्क्सवाद से ज़रा भी सम्बन्ध रखने का दावा नहीं करते लेकिन जो कौत्स्की और उनकी मंडली की तरह साम्राज्यवाद के अंतर्विरोधों की गहराई और उनसे अनिवार्य रूप से उत्पन्न होनेवाले क्रांतिकारी संकट पर परदा डालते हैं, आज भी सारी दुनिया में व्यापक रूप से प्रचलित हैं। सर्वहारा वर्ग की पार्टी का परम कर्त्तव्य है कि वह इन प्रवृत्तियों के विरुद्ध संघर्ष करे और छोटे-छोटे मालिकों को उन्हें ठगनेवाले पूंजीपति वर्ग के फंदे से निकालकर अपनी ओर ले आये, उन लाखों मेहनतकशों को अपनी ओर ले आये जो कमोबेश निम्न-पूंजीवादी अवस्था में रहते हैं।

५

"पूंजीवाद का परजीवी स्वभाव तथा उसका ह्रास" शीर्षक आठवें अध्याय के बारे में भी थोड़े से शब्द कहना ज़रूरी है। जैसा कि पुस्तक में बताया गया है, भूतपूर्व "मार्क्सवादी" और अब कौत्स्की के साथी हिल्फ़र्डिंग, जो कि "जर्मनी की स्वतंत्र सामाजिक-जनवादी पार्टी"[4] के अन्दर पूंजीवादी, सुधारवादी नीति के एक मुख्य प्रतिपादक हैं, इस प्रश्न पर **खुल्लमखुल्ला** शांतिवादी और सुधारवादी अंग्रेज़, हाबसन से भी एक क़दम

पीछे चले गये हैं। यह बात अब बिल्कुल साफ़ है कि सारे मज़दूर आन्दोलन में अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर फूट पड़ चुकी है (दूसरी और तीसरी इंटरनेशनल)। यह भी स्पष्ट है कि इस समय दोनों धाराओं के बीच सशस्त्र संघर्ष और गृह-युद्ध छिड़ा हुआ है: रूस में बोल्शेविकों के विरुद्ध कोल्चाक और देनीकिन को मेन्शेविकों और "समाजवादी-क्रांतिकारियों" की सहायता, जर्मनी में पूंजीपति वर्ग के साथ मिलकर शीदेमानवादियों, नोस्के आदि की स्पर्टकवादियों[5] के खिलाफ़ लड़ाई, तथा फ़िनलैंड, पोलैंड, हंगरी आदि में इसी तरह की चीज़ें। तो फिर ऐतिहासिक दृष्टि से विश्व व्यापी महत्व रखनेवाली इस घटना का आर्थिक आधार क्या है?

इसका आधार पूंजीवाद का परजीवी स्वरूप और ह्रास ही है जो कि उसके विकास की चरम ऐतिहासिक अवस्था में, अर्थात् साम्राज्यवादी अवस्था में, उसकी विशेषता होती हैं। जैसा कि इस पुस्तक में सिद्ध किया गया है, पूंजीवाद ने अब **मुट्ठी-भर** (दुनिया की आबादी के दसवें हिस्से से भी कम; अधिक से अधिक "दरिया-दिली" और उदारता से हिसाब लगाया जाये तब भी आबादी के पांचवें हिस्से से कम) असाधारण रूप से धनी और शक्तिशाली राज्यों को चुन लिया है जो केवल "कूपन काटकर" सारी दुनिया को लूट रहे हैं। युद्ध से पहले की क़ीमतों और पूंजीवादी आंकड़ों के अनुसार पूंजी के निर्यात से हर साल आठ या दस अरब फ़्रांक की आमदनी होती थी। अब तो निस्संदेह यह आमदनी बहुत बढ़ गयी है।

यह स्पष्ट है कि ऐसे विराट **अतिरिक्त मुनाफ़े** में से (इसलिए कि यह मुनाफ़ा उस सब मुनाफ़े के ऊपर और उसके अलावा है जो पूंजीपति "अपने" देश के मज़दूरों का शोषण करके इकट्ठा करते हैं) मज़दूर नेताओं को और रईस मज़दूरों के उच्च स्तर को **घूस देकर अपनी ओर कर लेना बिल्कुल संभव है**। और "आगे बढ़े हुए" देशों के पूंजीवादी उन्हें घूस दे भी रहे हैं; वे उन्हें हज़ारों तरह के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, खुल्लमखुल्ला और छुपे-ढके तरीक़ों से घूस देते हैं।

पूंजीवादी रंग में रंगे हुए मज़दूरों का यह स्तर, "मज़दूर अमीरों" का यह दल ही, जो अपने रहन-सहन की दृष्टि से, अपनी कमाई की मात्रा की दृष्टि से और अपने दृष्टिकोण में बिल्कुल कूपमंडूक होता है, दूसरी इंटरनेशनल का मुख्य आधार और आज हमारे समय में **पूंजीपति वर्ग का सामाजिक** (सैनिक नहीं) **आधार** बना हुआ है। **मज़दूर वर्ग** के आन्दोलन **के भीतर** ये लोग ही **पूंजीपति वर्ग के** असली **दलाल**, मज़दूरों में पूंजीपति वर्ग के गुर्गे और सुधारवाद और अंधराष्ट्रवाद के असली वाहक हैं। सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच गृह-युद्ध होने पर ये लोग अनिवार्य रूप से, और बड़ी तादाद में, पूंजीपति वर्ग का साथ देते हैं, "कम्यूनारों" के विरुद्ध वे "वार्साइ वालों" के साथ खड़े होते हैं।

जब तक इस प्रक्रिया की आर्थिक जड़ें नहीं समझ ली जातीं, और जब तक उसका राजनीतिक और सामाजिक महत्व नहीं पहचान लिया जाता, तब तक कम्युनिस्ट आन्दोलन और आनेवाली सामाजिक क्रांति की अमली समस्याओं को हल करने के काम में ज़रा भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता।

साम्राज्यवाद सर्वहारा वर्ग की सामाजिक क्रांति की पूर्व-वेला है। यह बात १९१७ के बाद से सारी दुनिया में साबित हो चुकी है।

६ जुलाई, १९२०

न० लेनिन

पिछले पंद्रह या बीस बरसों में, खास तौर से स्पेनिश-अमरीकी युद्ध (१८६८), और अंग्रेज़-बोएर युद्ध (१८६६-१६०२) के बाद से वर्तमान युग का वर्णन करने के लिए दोनों गोलार्द्धों के आर्थिक और राजनीतिक साहित्य में "साम्राज्यवाद" शब्द को अधिकाधिक अपनाया गया है। १६०२ में, एक अंग्रेज़ अर्थशास्त्री, जे० ए० हाबसन की पुस्तक "साम्राज्यवाद" लंदन और न्यूयार्क से प्रकाशित हुई थी। इस लेखक ने, जिसका दृष्टिकोण पूंजीवादी सामाजिक-सुधारवाद और शांतिवाद का है जो कि बुनियादी तौर पर भूतपूर्व मार्क्सवादी, का० कौत्स्की के मौजूदा विचारों से मिलता-जुलता है, साम्राज्यवाद की मुख्य आर्थिक और राजनीतिक विशेषताओं का बहुत अच्छा और विस्तृत वर्णन किया है। १६१० में वियना में आस्ट्रिया के मार्क्सवादी रुडोल्फ़ हिल्फ़र्डिंग की "वित्तीय पूंजी" नामक पुस्तक (रूसी संस्करण: मास्को, १६१२) प्रकाशित हुई थी। बावजूद इसके कि उसमें लेखक ने द्रव्य के सिद्धांत के बारे में ग़लती की है और किसी हद तक मार्क्सवाद तथा अवसरवाद को मिलाने की प्रवृत्ति दिखलायी है, इस पुस्तक में "पूंजीवादी विकास की नवीनतम अवस्था" की, जो कि इस पुस्तक का उप-शीर्षक है, बहुत ही मूल्यवान सैद्धान्तिक व्याख्या मिलती है। वास्तव में पिछले कुछ वर्षों में साम्राज्यवाद के बारे में जो कुछ भी कहा गया है, खास तौर से अनेकों पत्रिकाओं तथा अखबारों के लेखों में, और प्रस्तावों में—उदाहरण के लिए, १६१२ की शरद ऋतु में होनेवाली चेमनित्ज़ और बैसेल की कांग्रेसों के प्रस्तावों में—वह इन विचारों से, यानी, उपरोक्त

दो लेखकों द्वारा प्रस्तुत किये गये, बल्कि यह कहना अधिक सही होगा कि उपरोक्त दो लेखकों द्वारा सार-रूप में प्रतिपादित विचारों से बहुत आगे नहीं जाता।

बाद में, हम संक्षेप में और जितनी सरलता से हो सकेगा साम्राज्यवाद की मुख्य आर्थिक विशेषताओं के आपसी संबंधों को दिखलाने की कोशिश करेंगे। इस प्रश्न के ग़ैर-आर्थिक पहलुओं पर हम विचार न कर सकेंगे, वे कितने ही विचारणीय क्यों न हों। हमने तमाम साहित्य-सम्बंधी उल्लेखों और दूसरी टिप्पणियों को इस पुस्तिका[6] के अंत में दे दिया है, क्योंकि शायद सभी पाठकों को उनमें दिलचस्पी न होगी।

१. उत्पादन का संकेंद्रण और इजारेदारियां

उद्योग-धंधों की ज़बरदस्त बढ़ती और उत्पादन के बड़े से बड़े कारबारों में संकेंद्रण की विलक्षण रूप से तेज़ प्रक्रिया पूंजीवाद की एक बहुत ही महत्वपूर्ण विशेषता है। उत्पादन की आधुनिक अंक-गणनाओं से हमें इस प्रक्रिया के बारे में बहुत पूरे और ठीक-ठीक तथ्य मिल जाते हैं।

उदाहरण के लिए, जर्मनी में हर १,००० औद्योगिक कारखानों में, बड़े कारखानों की संख्या, अर्थात् जिनमें ५० से अधिक मज़दूर काम करते हैं, १८८२ में तीन, १८९५ में छः और १९०७ में नौ थी। इसी भांति काम में लगे हुए हर सौ मज़दूरों के पीछे इस कोटि के कारख़ानों में क्रमशः २२, ३० और ३७ मजदूर काम करते थे। किन्तु उत्पादन का संकेंद्रण मज़दूरों के संकेंद्रण से ज्यादा तेज़ होता है, क्योंकि बड़े कारखानों में श्रम कहीं ज्यादा उत्पादनशील होता है। यह बात भाप के इंजनों और बिजली के मोटरों के बारे में जो आंकड़े मिलते हैं उनसे साफ़ हो जाती है। यदि हम इस चीज़ को लें, जिसे जर्मनी में मोटे तौर पर उद्योग कहते हैं, अर्थात् जिसमें व्यापार, यातायात आदि शामिल हैं, तो हमें यह तस्वीर

मिलती है: कुल ३२,६५,६२३ कारख़ानों में से बड़े पैमाने के कारख़ानों की संख्या ३०,५८८ यानी ०.६ फ़ीसदी है। इन कारख़ानों में, तमाम कारख़ानों में काम करनेवाले कुल १,४४,००,००० मज़दूरों में से ५७,००,००० यानी ३६.४ फ़ीसदी मज़दूर काम करते हैं; ये कारख़ाने कुल ८८,००,००० अश्वशक्ति भाप में से ६६,००,००० अश्वशक्ति, यानी ७५.३ फ़ीसदी भाप इस्तेमाल करते हैं; और कुल १५,००,००० किलोवाट बिजली में से १२,००,००० किलोवाट, यानी ७७.२ फ़ीसदी बिजली इस्तेमाल करते हैं।

कुल कारख़ानों का एक फ़ीसदी से भी कम हिस्सा भाप और बिजली की ताक़त का **तीन-चौथाई से भी अधिक भाग** इस्तेमाल करता है! उनतीस लाख सत्तर हज़ार छोटे कारख़ाने (जिनमें पांच मज़दूर तक काम करते हैं), जो कुल कारख़ानों की संख्या का ६१ फ़ीसदी हिस्सा हैं, भाप और बिजली की कुल शक्ति का केवल ७ फ़ीसदी भाग इस्तेमाल करते हैं! कुछ हज़ार बड़े पैमाने के कारख़ाने सब कुछ हैं, लाखों छोटे-छोटे कारख़ाने कुछ भी नहीं हैं।

१६०७ में जर्मनी में ५८६ ऐसे औद्योगिक कारख़ाने थे जिनमें से प्रत्येक में एक हज़ार से अधिक मज़दूर काम करते थे, अर्थात् उनमें उद्योगों में काम करनेवाले मज़दूरों की कुल संख्या का **दसवां** हिस्सा (१३,८०,०००) काम करता था और भाप और बिजली की कुल ताक़त का **क़रीब-क़रीब एक-तिहाई** (३२ फ़ीसदी) हिस्सा इन कारख़ानों में इस्तेमाल होता था।* जैसा कि हम आगे देखेंगे, द्रव्य पूंजी और बैंक इन मुट्ठी-भर सबसे बड़े कारख़ानों की ताक़त को और भी ज़बरदस्त बना देते हैं। यह बात उसके बिल्कुल शब्दशः अर्थ में कही जा रही है, मतलब यह कि लाखों छोटे-छोटे,

* आंकड़े *Annalen des deutschen Reichs*, 1911, Zahn से लिये गये हैं।

मंझोले और यहां तक कि कुछ बड़े "मालिक" भी, वास्तव में कुछ सौ करोड़पति महाजनों के पूरी तरह से आधीन रहते हैं।

आधुनिक पूंजीवाद के दूसरे उन्नत देश संयुक्त राज्य अमरीका में, उत्पादन के संकेंद्रण की वृद्धि और भी ज़्यादा है। यहां के आंकड़ों में उद्योगों को उनके संकुचित रूप में लिया गया है और कारख़ानों का वर्गीकरण उनकी सालाना पैदावार के मूल्य के हिसाब से किया गया है। १९०४ में दस लाख डालर और उससे ज़्यादा सालाना पैदावार वाले बड़े-बड़े कारख़ानों की संख्या (कुल २,१६,१८० में से) १,९०० (अर्थात् ०.९ फ़ीसदी) थी। उनमें (कुल ५५,००,००० में से) १४,००,००० (यानी २५.६ फ़ीसदी) मज़दूर काम करते थे और उनकी पैदावार का मूल्य (कुल १४,८०,००,००,००० डालर में से) ५,६०,००,००,००० डालर (यानी ३८ फ़ीसदी) था। पांच साल बाद, १९०९ में यही आंकड़े इस प्रकार थे: (कुल २,६८,४९१ में से) ३,०६० (यानी १.१ फ़ीसदी) कारख़ानों में (कुल ६६,००,००० मज़दूरों में से) २०,००,००० (यानी ३०.५ फ़ीसदी) मज़दूर काम पर लगे हुए थे और पैदावार का मूल्य (कुल २०,७०,००,००,००० डालर की पैदावार में से) ९,००,००,००,००० डालर (यानी ४३.८ फ़ीसदी) था।*

देश के तमाम कारख़ानों की कुल पैदावार का क़रीब-क़रीब आधा भाग उन कारख़ानों के **सौवें हिस्से में** होता था! इन ३,००० विशालकाय कारख़ानों में उद्योगों की २५८ शाखाएं शामिल हैं। इससे यह बात देखी जा सकती है कि संकेंद्रण स्वयं, अपने विकास की एक मंज़िल में पहुंचकर सीधे इजारेदारी तक पहुंच जाता है, क्योंकि बीस-पच्चीस विशालकाय कारख़ाने आसानी से आपस में समझौता कर सकते हैं और दूसरी ओर, प्रतियोगिता की कठिनाइयां और इजारेदारी की तरफ़ झुकाव कारख़ानों

---

* *Statistical Abstract of the United States,* 1912, p. 202.

की विशालता से ही उत्पन्न होते हैं। प्रतियोगिता का इस प्रकार इजारेदारी में बदल जाना आधुनिक पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण नहीं तो कम से कम एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना अवश्य है और हमें उसपर विस्तार से विचार करना चाहिए। किन्तु उसके पहले, एक संभव ग़लतफ़हमी को हमें दूर कर लेना चाहिए।

अमरीकी आंकड़े बतलाते हैं कि उद्योगों की २५० शाखाओं में ३,००० बड़े-बड़े कारख़ाने हैं, मानो उद्योगों की हर शाखा में विशालतम पैमाने के सिर्फ़ बारह कारख़ाने हैं।

पर बात ऐसी नहीं है। उद्योगों की हर शाखा में बड़े पैमाने के कारख़ाने नहीं हैं, और इसके अलावा, अपने विकास की चरम अवस्था में पूंजीवाद की एक अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता, उत्पादन का तथाकथित **संयोजन**, अर्थात् उद्योगों की उन विभिन्न शाखाओं का एक ही कारख़ाने के अंदर आ जाना है, जिनका संबंध या तो कच्चे माल को तैयार करने की क्रमिक अवस्थाओं से होता है (जैसे कि खनिज लोहे को गलाकर कच्चा लोहा तैयार करना, कच्चे लोहे से इस्पात बनाना, और फिर शायद इस्पात की विभिन्न चीज़ें तैयार करना), या फिर जो एक दूसरे की सहायक होती हैं (जैसे बेकार जानेवाले कच्चे माल का या मुख्य चीज़ के उत्पादन के दौरान में पैदा हो जानेवाली दूसरी छोटी-छोटी चीज़ों का उपयोग करने का उद्योग; पैकिंग का सामान तैयार करने का उद्योग, आदि)।

हिल्फ़र्डिंग लिखते हैं: "कारख़ाने के सम्मिलन से व्यापार के चढ़ाव-उतार बराबर हो जाते हैं और इसलिए सम्मिलित कारख़ाने के मुनाफ़े की दर अधिक स्थायी हो जाती है। दूसरे, सम्मिलित कारख़ानों की वजह से व्यापार की ज़रूरत ख़त्म हो जाती है। तीसरे, उसके कारण प्राविधिक उन्नति की गुंजाइश बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप उससे 'विशुद्ध' (अर्थात् अ-सम्मिलित) कारख़ानों से होनेवाले मुनाफ़े की

अपेक्षा 'अतिरिक्त' मुनाफ़ा होता है। चौथे, गहरी मंदी के ज़माने में, जब तैयार माल के दामों में कच्चे माल के दामों की अपेक्षा ज़्यादा कमी होने लगती है, उस समय इस बात के कारण 'विशुद्ध' कारख़ानों की अपेक्षा सम्मिलित कारख़ानों की हालत ज़्यादा मज़बूत होती है, प्रतियोगिता के संघर्ष में वे मज़बूत होते हैं।"*

जर्मन पूंजीवादी अर्थशास्त्री, हेमैन ने जर्मनी के लोहे के उद्योग में "मिश्रित" अर्थात् सम्मिलित कारख़ानों के सम्बंध में एक विशेष पुस्तक लिखी है। वह कहते हैं: "कच्चे माल की महंगी दर और तैयार माल की सस्ती दर के चाकों के बीच कुचलकर विशुद्ध कारख़ाने नष्ट हो जाते हैं।" इस भांति हमें निम्नलिखित तस्वीर मिलती है: "एक तरफ़ तो बड़ी-बड़ी कोयले की कम्पनियां हैं जो लाखों टन कोयला हर साल पैदा करती हैं और जो अपने कोयला-सिंडीकेट में मज़बूती से संगठित हैं और दूसरी ओर, कोयले की खानों से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध बड़े-बड़े इस्पात के कारख़ाने हैं जिनका अपना इस्पात का सिंडीकेट है। ये विशाल कारख़ाने, जो हर साल ४,००,००० टन इस्पात तैयार करते हैं, जिनमें विपुल परिमाण में कच्ची धातु तथा कोयले की खपत होती है और जो इस्पात की चीज़ें भी तैयार करते हैं, जिनमें १०,००० मज़दूर काम करते हैं, जो कम्पनी के ही क्वार्टरों में रहते हैं, कभी-कभी जिनके खुद अपने बन्दरगाह और रेलवे लाइनें भी होती हैं, जर्मनी के लोहे और इस्पात उद्योग के ठेठ प्रतिनिधि हैं। और संकेंद्रण बढ़ता जा रहा है। अलग-अलग कारख़ाने दिनोंदिन बड़े होते जा रहे हैं। अधिकाधिक संख्या में कारख़ाने, वे चाहे किसी एक ही उद्योग से संबंधित हों या कई अलग-अलग उद्योगों के हों, मिलकर विशालकाय कारख़ानों के रूप में संगठित हो रहे हैं, जिनके पीछे बर्लिन के आधे दर्जन बैंक हैं जो उनको निर्देशित करते हैं। जर्मनी के खनिज

*"वित्तीय पूंजी", रूसी संस्करण, पृष्ठ २८६-२८७।

उद्योग में तो संकेंद्रण के बारे में कार्ल मार्क्स की शिक्षा निश्चित रूप से चरितार्थ हुई है; अलबत्ता यह बात एक ऐसे देश पर लागू होती है जहां चुंगियों और लाने ले जाने के महसूलों के द्वारा इस उद्योग की रक्षा की जाती है। जर्मनी का खनिज उद्योग अब उस परिपक्वता की अवस्था में पहुंच गया है जब कि उसे ज़ब्त कर लिया जाना चाहिए।"*

एक ईमानदार पूंजीवादी अर्थशास्त्री भी–यद्यपि ऐसे लोग अपवाद के तौर पर हैं–इसी नतीजे पर पहुंचने के लिए मजबूर हैं। यह बात ध्यान देने की है कि ऐसा प्रतीत होता है कि वह जर्मनी को एक विशेष श्रेणी में रखता है क्योंकि वहां के उद्योग ऊंची चुंगियों द्वारा सुरक्षित हैं। किन्तु कारख़ानेदारों के इजारेदार संघों, कार्टेलों, और सिंडीकेटों इत्यादि के संकेंद्रण तथा निर्माण की रफ़्तार इस परिस्थिति के कारण तेज़ ही होती है। इस बात को ध्यान में रखना बहुत महत्वपूर्ण है कि खुले व्यापार वाले इंगलैंड में संकेंद्रण इजारेदारी को **भी** जन्म देता है, यद्यपि कुछ बाद में और शायद दूसरे रूप में। प्रोफ़ेसर हेरमन लेवी ने "इजारेदारियां, कार्टेल और ट्रस्ट" नामक अपनी विशेष खोजपूर्ण पुस्तक में जो ब्रिटेन के आर्थिक विकास सम्बंधी तथ्यों पर आधारित है, लिखा है :

"ग्रेट ब्रिटेन में कारख़ानों के बड़े आकार और उसके उच्च प्राविधिक स्तर में ही इजारेदारी की प्रवृत्ति छिपी है। इसका एक कारण यह भी है कि हर कारख़ाने में लगी पूंजी की मात्रा बहुत बड़ी है जिसकी वजह से नये कारख़ानों के लिए आवश्यक पूंजी की मात्रा बढ़ती जाती है और इसलिए उनको शुरू करना ज़्यादा कठिन हो जाता है। इसके अलावा (और यह बात हमें और ज़्यादा महत्वपूर्ण लगती है) संकेंद्रण

---

* Hans Gideon Heymann, *«Die gemischten Werke im deutschen Grosseisengewerbe»* (जर्मनी में लोहे के बड़े उद्योग में सम्मिलित कारख़ाने–अनु०), स्टटगार्ट १९०४ (पृष्ठ २५६, २७८)।

की बुनियाद पर खड़े होनेवाले बड़े-बडे कारखानों के मुक़ाबिले में टिकने के लिए हर नया कारख़ाना ज़रूरत से इतना ज़्यादा फ़ालतू माल पैदा करेगा कि उसे वह या तो मुनाफ़े के साथ केवल तब निकाल सकेगा जबकि उस माल की मांग बहुत ज़्यादा बढ़ जाये, या फिर उस फ़ालतू माल की वजह से क़ीमतें इतनी कम हो जायेंगी कि उस नये कारख़ाने और दूसरे इजारेदारी संघों, दोनों को घाटा पहुंचेगा।" दूसरे देशों से भिन्न, जहां रक्षात्मक चुंगियों के कारण कार्टेल बनाने में आसानी होती है, इंगलैंड में कारख़ानेदारों की इजारेदारी गुटबन्दियां, कार्टेल और ट्रस्ट, अधिकतर तभी पैदा होते हैं जबकि प्रतियोगिता करनेवाले कारोबारों की संख्या केवल "कुछ दर्जन के लगभग" रह जाती है। "बड़े उद्योग के क्षेत्र में इजारेदारियों के बनने पर संकेंद्रण की क्रिया का क्या असर पड़ता है, यह चीज़ यहां पर आइने की तरह साफ़ नज़र आती है।"*

पचास वर्ष पहले जब मार्क्स "पूंजी" लिख रहे थे, तब खुली प्रतियोगिता अधिकांश अर्थशास्त्रियों को एक "प्राकृतिक नियम" जान पड़ती थी। सरकारी विज्ञान ने चुप्पी साधने का षड्यंत्र करके मार्क्स के ग्रंथों की हत्या करने की कोशिश की, जिन्होंने पूंजीवाद का ऐतिहासिक और सैद्धांतिक विश्लेषण करके यह दिखलाया कि खुली प्रतियोगिता से उत्पादन का संकेंद्रण पैदा होता है जिससे आगे चलकर, विकास की एक ख़ास मंज़िल में, इजारेदारियों का जन्म होता है। आज इजारेदारी एक वास्तविकता बन गयी है। अर्थशास्त्री अब लिख-लिखकर किताबों के पहाड़ खड़े कर रहे हैं जिनमें वे इजारेदारी के विभिन्न रूपों का वर्णन करते हैं, और साथ ही वे एक स्वर से यह भी घोषणा करते जाते हैं कि "मार्क्सवाद का खंडन हो गया"। पर वास्तविकता जैसा

---

* Hermann Levy, «*Monopole, Kartelle und Trusts*», Jena, 1909, SS. 286, 290, 298.

कि अंग्रेज़ी कहावत है, बड़ी हठीली चीज़ है, और हम चाहें या न चाहें, हमें उसपर ध्यान देना ही पड़ता है। तथ्य यह सिद्ध करते हैं कि रक्षा के लिए लगायी गयी चुंगियों या खुले व्यापार जैसी चीज़ों की दृष्टि से विभिन्न पूंजीवादी देशों के आपसी भेदों के कारण इजारेदारियों के रूपों में या उनके प्रगट होने के समय में बहुत ही नगण्य फ़र्क़ पड़ता है; और यह कि उत्पादन के संकेंद्रण के परिणामस्वरूप इजारेदारियों का उदय होना पूंजीवाद के विकास की मौजूदा अवस्था का एक आम और बुनियादी नियम है।

यूरोप के बारे में यह काफ़ी हद तक ठीक-ठीक तय किया जा सकता है कि नये पूंजीवाद ने पुराने का स्थान **अंतिम रूप से** कब लिया: यह बीसवीं शताब्दी के शुरू में हुआ था। "इजारेदारियों के निर्माण" के इतिहास के एक नवीनतम संकलन में लिखा है:

"१८६० से पहले के ज़माने से पूंजीवादी इजारेदारी के इक्के-दुक्के उदाहरण दिये जा सकते हैं; उनमें इजारेदारियों के आज के प्रचलित रूपों के अंकुर देखे जा सकते हैं; पर वह सब निस्संदेह कार्टेलों के इतिहास से पहले की बात है। आधुनिक इजारेदारी का असली आरम्भ हद से हद उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में हुआ था। इजारेदारी के विकास का पहला महत्वपूर्ण युग आठवें दशक में अन्तर्राष्ट्रीय औद्योगिक मंदी के साथ शुरू हुआ था और लगभग अंतिम दशक के आरंभ तक चलता रहा था।" "अगर इस सवाल को हम यूरोपीय पैमाने पर देखें तो हमें पता चलेगा कि खुली प्रतियोगिता सातवें और आठवें दशक में ही चोटी पर पहुंची थी। इंगलैंड ने अपने पुराने ढंग के पूंजीवादी संगठन का निर्माण इसी समय में पूरा किया था। जर्मनी में इस संगठन का दस्तकारी और घरेलू उद्योगों के साथ तीव्र संघर्ष छिड़ गया था और वह अपने लिए अस्तित्व के स्वयं अपने रूपों की रचना करने लगा था।"

"महान क्रान्ति १८७३ के संकट से, या यों कहें कि उसके बाद आनेवाली मंदी के वक़्त से, शुरू हुई थी; और नवें दशक के आरंभ में उन नगण्य अल्पकालीन अवधियों को छोड़कर जब यह मंदी थोड़े समय के लिए दूर हो गयी और १८८६ के लगभग असाधारण रूप से प्रबल परन्तु बहुत ही थोड़े समय तक रहनेवाली तेज़ी के उस ज़माने को छोड़कर यह मंदी यूरोप के आर्थिक इतिहास में बाईस वर्ष तक छायी रही। १८८६-६० के थोड़े दिनों की तेज़ी के ज़माने में व्यापार की अनुकूल परिस्थितियों से फ़ायदा उठाने के लिए कार्टेल व्यवस्था का बहुत बड़े पैमाने पर उपयोग किया गया था। लेकिन अदूरदर्शी नीति के कारण चीज़ों के दाम और भी तेज़ी के साथ और भी ऊंचे चढ़ गये जो यदि कार्टेल न होते तो न होता, और इस तबाही में क़रीब-क़रीब सभी कार्टेल शर्मनाक मौत मर गये। इसके बाद पांच साल तक व्यापार की हालत बुरी रही और क़ीमतें गिरी रहीं, पर अब उद्योग में एक नयी भावना व्याप्त थी; मंदी को अब एक अनिवार्य बात नहीं माना जाता था: अब लोग मंदी को केवल आगे आनेवाली तेज़ी के पहले का ठहराव मानने लगे थे।

"अब कार्टेल-आन्दोलन ने अपने दूसरे युग में पैर रखा: अब कार्टेल एक क्षणिक घटना होने की जगह आर्थिक जीवन का एक आधार बन गये। एक के बाद एक क्षेत्र में, खास तौर से कच्चे माल के उद्योग में, उनका राज फैलने लगा। अंतिम दशक के आरंभ में कार्टेल-पद्धति ने कोक सिंडीकेट के रूप में, जिसको आदर्श मानकर बाद में कोयला सिंडीकेट बना, इतनी कार्टेल-टेकनीक प्राप्त कर ली थी कि उसमें और उन्नति करना कठिन था। १६ वीं शताब्दी के अंत की भारी तेज़ी और १६००-०३ का संकट दोनों पहली बार—कम से कम खानों के और लोहे के उद्योगों में—एकदम कार्टेलों की छत्रछाया में आये। और यद्यपि उस समय यह बात अनोखी मालूम होती थी, पर अब

तो साधारण जनता भी इस बात को मानकर चलती है कि आर्थिक जीवन के बड़े-बड़े क्षेत्र खुली प्रतियोगिता के क्षेत्र से बाहर कर लिये गये हैं।"*

इस भांति इजारेदारियों के इतिहास की मुख्य अवस्थाएं निम्नलिखित हैं: (१) १८६०-७०, खुली प्रतियोगिता की चरम अवस्था, उसके विकास का शिखर; इजारेदारियां अभी मुश्किल से ही दिखायी देती थीं, वे अभी अंकुर रूप में ही मौजूद थीं। (२) १८७३ के संकट के बाद, कार्टेलों का एक विस्तृत क्षेत्र में विकास पर अभी वे अपवाद के रूप में ही हैं। अभी वे टिकाऊ नहीं बन पाये हैं। अभी उनका रूप अस्थायी ही है। (३) उन्नीसवीं शताब्दी के अंत की तेज़ी और १९००-०३ का संकट। कार्टेल समूचे आर्थिक जीवन का एक आधार बन गये हैं। पूंजीवाद साम्राज्यवाद में बदल गया है।

कार्टेल बिक्री की शर्त्तों, अदायगी की शर्तों, आदि के बारे में समझौता कर लेते हैं। वे मंडियों को आपस में बांट लेते हैं। वे यह तय कर लेते हैं कि कितना माल पैदा किया जायेगा। वे क़ीमतें तय कर लेते हैं। वे मुनाफ़े को विभिन्न कारख़ानों आदि में बांट लेते हैं।

अंदाज़ा लगाया गया था कि १८९६ में जर्मनी में कार्टेलों की संख्या २५० और १९०५ में ३८५ थी, और इनमें क़रीब-क़रीब

---

* Th. Vogelstein, «*Grundriss der Sozialökonomik*», VI Abt., Tübingen, 1914 (सामाजिक अर्थशास्त्र की रूपरेखा – अनु०) में «*Die finanzielle Organisation der kapitalistischen Industrie und die Monopolbildungen*» (पूंजीवादी उद्योग का वित्तीय संगठन और इजारेदारियों का निर्माण – अनु०)। इसी लेखक की यह रचना भी देखिये: «*Organisationsformen der Eisenindustrie und Textilindustrie in England und America*» (इंगलैंड तथा अमरीका के लोहे तथा कपड़े के उद्योग के संगठनात्मक रूप – अनु०), Bd. I, Lpz. 1910.

१२,००० कम्पनियां हिस्सा ले रही थीं।* पर यह आम तौर पर मान लिया गया है कि ये संख्याएं बहुत कम हैं। १९०७ में जर्मनी के उद्योगों के जिन आंकड़ों को हमने ऊपर उद्धृत किया है, उनसे यह साफ़ है कि ये १२,००० बहुत बड़े-बड़े कारख़ाने भी निश्चित रूप से पूरे देश में ख़र्च होनेवाली भाप और बिजली की ताक़त के आधे से भी ज़्यादा हिस्से का इस्तेमाल करते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में ट्रस्टों की संख्या १९०० में १८५ और १९०७ में २५० थी। अमरीकी आंकड़ों में तमाम औद्योगिक कारख़ानों को उनके स्वामित्व के अनुसार व्यक्तिगत, प्राइवेट फ़र्मों या कार्पोरेशनों की तीन श्रेणियों में बांटा गया है। १९०४ में कार्पोरेशनों की संख्या कुल कम्पनियों की २३.६ फ़ीसदी, और १९०९ में २५.९ फ़ीसदी (अर्थात् देश के कुल कारख़ानों की कुल संख्या के चौथाई से भी अधिक) थी। १९०४ में उनमें काम करनेवाले मज़दूरों की संख्या कुल मज़दूरों की ७०.६ फ़ीसदी और १९०९ में ७५.६ फ़ीसदी (अर्थात् तीन-चौथाई से भी अधिक) थी। उनकी पैदावार १९०४ और १९०९ में क्रमशः १०,९०,००,००,००० डालर, अर्थात् कुल पैदावार की ७३.७ फ़ीसदी, और १६,३०,००,००,००० डालर अर्थात् कुल पैदावार की ७९.० फ़ीसदी थी।

अक्सर कार्टेल और ट्रस्ट उद्योग की किसी शाखा की कुल पैदावार का दस में से सात या आठ से भी अधिक हिस्सा अपने हाथों में कर लेते हैं। १८९३ में जब राइन-वेस्टफ़ालियन कोयला सिंडीकेट

---

* Dr. Riesser, «*Die deutschen Grossbanken und ihre Konzentration im Zusammenhange mit der Entwicklung der Gesamtwirtschaft in Deutschland*» (जर्मनी के बड़े-बड़े बैंक और जर्मनी में आम अर्थतंत्र के विकास के संबंध में उनका संकेंद्रण – अनु०), 4. Aufl., 1912, S. 149; Robert Liefmann, «*Kartelle und Trusts und die Weiterbildung der volkswirtschaftlichen Organisation*» (कार्टेल तथा ट्रस्ट और आर्थिक संगठनों का और अधिक विकास – अनु०), 2. Aufl., 1910, S. 25.

बना तो उस क्षेत्र की कोयले की कुल पैदावार का ८६.७ फ़ीसदी हिस्सा उसके हाथों में था, और १६१० में उसका क़ब्ज़ा ६५.४ फ़ीसदी पैदावार पर हो गया था।* इस तरह की इजारेदारियों से मुनाफ़ा बेहद बढ़ जाता है और टेकनीक और उत्पादन की दृष्टि से विराट आकार के कारखानों का जन्म होता है। अमरीका की मशहूर स्टण्डैर्ड आयल कम्पनी १६०० में बनी थी। "उसकी अधिकृत पूंजी १५,००,००,००० डालर है। उसने १०,००,००,००० डालर के साधारण और १०,६०,००,००० डालर के विशेष स्टाक शेयर जारी किये थे। १६०० से १६०७ तक बाद वाले शेयरों पर हर वर्ष क्रमशः ४८, ४८, ४५, ४४, ३६, ४०, ४०, ४० फ़ीसदी, अर्थात् कुल ३६,७०,००,००० डालर का डिवीडेण्ड बांटा गया। १८८२ से १६०७ तक उसे कुल ८८,६०,००,००० डालर का साफ़ मुनाफ़ा हुआ था जिसमें से ६०,६०,००,००० डालर डिवीडेण्डों में बांट दिये गये और बाक़ी संरक्षित पूंजी के रूप में रख दिया गया।"** "१६०७ में यूनाइटेड स्टेट्स स्टील कार्पोरेशन के विभिन्न कारखानों में २,१०,१८० मज़दूर और दूसरे कर्मचारी काम करते थे। खानों के उद्योग-धंधे में गेलसेनकिर्चेन खान कम्पनी (*Gelsenkirchener Bergwerksgesellschaft*) में, जो जर्मनी में सबसे बड़ी है, १६०८ में ४६,०४८ मज़दूर और दफ़्तर के कर्मचारी

---

* Dr. Fritz Kestner, *«Der Organisationszwang. Eine Untersuchung über die Kämpfe zwischen Kartellen und Aussenseitern»* (अनिवार्य संगठन। कार्टेल तथा बाहरी लोगों के बीच संघर्ष की एक छानबीन।—अनु०), Berlin 1912, पृष्ठ ११।

** R. Liefmann, *«Beteiligungs-und Finanzierungsgesellschaften. Eine Studie über den modernen Kapitalismus und das Effectenwesen»* (होल्डिंग तथा फ़ाइनेंस कम्पनियां—आधुनिक पूंजीवाद तथा सिक्योरिटियों का एक अनुसंधान—अनु०), 1. Aufl. Jena 1909, पृष्ठ २१२।

काम करते थे।* १९०२ में यूनाइटेड स्टेट्स स्टील कार्पोरेशन का इस्पात का उत्पादन ९०,००,००० टन तक पहुंच चुका था।** १९०१ में उसकी पैदावार, अमरीका में इस्पात की कुल पैदावार की ६६.३ फ़ीसदी और १९०८ में ५६.१ फ़ीसदी थी।*** खनिज धातुओं का उत्पादन इन्हीं वर्षों में क्रमशः ४३.९ फ़ीसदी और ४६.३ फ़ीसदी था।

ट्रस्टों के बारे में अमरीकी सरकार के आयोग की रिपोर्ट में लिखा है: "अपने प्रतियोगियों की तुलना में ट्रस्टों की श्रेष्ठता उनके कारख़ानों की विशालता और उत्तम प्राविधिक साधनों के कारण है। अपने जन्म से ही तम्बाकू ट्रस्ट ने शारीरिक श्रम के स्थान पर मशीनों के श्रम का बड़े पैमाने पर उपयोग करने की पूरी-पूरी कोशिश की है। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर उसने उन तमाम पेटेन्टों को ख़रीद लिया जिनका तम्बाकू के बनाने से तनिक भी सम्बंध था और इस काम के लिए उसने बहुत धन ख़र्च किया। इनमें से बहुत से पेटेन्ट शुरू में किसी काम के न साबित हुए और ट्रस्ट में काम करनेवाले इंजीनियरों को उन्हें सुधारना पड़ा। १९०६ के अंत में केवल पेटेन्टों को ख़रीदने के उद्देश्य से दो सहायक कम्पनियां खड़ी की गयीं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए ट्रस्ट ने अपने ढलाई के कारख़ाने, मशीनों और मरम्मत के कारख़ाने बनाये। ब्रुकलिन में ऐसे ही एक कारख़ाने में औसतन ३०० मज़दूर काम करते हैं; इस कारख़ाने में सिगरेटें, चुरुट, सुंघनी, पैकिंग के लिए पन्नी, तथा डिब्बे आदि बनाने से संबंधित आविष्कारों पर बराबर प्रयोग

---

*उपरोक्त पुस्तक, पृष्ठ २१८।

** Dr. S. Tschierschky, «*Kartell und Trust*» (कार्टेल और ट्रस्ट–अनु०), Göttingen, 1903, पृष्ठ १३।

*** Th. Vogelstein, «*Organisationsformen*» (संगठन के रूप – अनु०), पृष्ठ २७५।

किये जाते हैं। यहीं पर आविष्कारों को पक्का भी किया जाता है।"* "दूसरे ट्रस्ट भी तथाकथित *developping engineers* (उन्नति करनेवाले इंजीनियरों) को नौकर रखते हैं, जिनका काम ही यह होता है कि वे उत्पादन के नये-नये उपायों को निकालें और प्राविधिक सुधारों की जांच करें। यूनाइटेड स्टेट्स स्टील कार्पोरेशन उन मज़दूरों और इंजीनियरों को जो प्राविधिक कार्यक्षमता वाला या उत्पादन की लागत को कम करनेवाला आविष्कार करते हैं, बड़े-बड़े बोनस देता है।"**

जर्मनी के बड़े पैमाने के उद्योगों में, उदाहरण के लिए, रसायन उद्योग में जो कि पिछली कुछ दशाब्दियों में इतना अधिक उन्नत हो गया है, प्राविधिक सुधारों को बढ़ावा देने का काम इसी तरह से संगठित किया जाता है। उत्पादन के संकेंद्रण की प्रक्रिया के कारण १९०८ तक जर्मनी में दो मुख्य "गुट" बन गये थे जो कि एक तरह से इजारेदारियां ही थीं। पहले वे दो जोड़ बड़ी फ़ैक्टरियों के बीच "दोहरे गठजोड़े" के रूप में थे; उनमें से हरेक के पास दो करोड़ से दो करोड़ दस लाख मार्क तक की पूंजी थी। इनमें से एक तरफ़ तो हौख़स्ट स्थित पुरानी माइस्टर फ़ैक्टरी और फ़्रैंकफ़र्ट आम मेन स्थित कैसेला फ़ैक्टरी थी, और दूसरी ओर, लुडविगशैफ़ेन स्थित सोडा और रंगों की फ़ैक्टरी तथा एल्बरफ़ेल्ड स्थित पुरानी बायर फ़ैक्टरी थी। १९०५ में इनमें से एक गुट ने, और फिर १९०८ में दूसरे ने, अलग-अलग एक

---

* *Report of the Commissioner of Corporations on the Tobacco Industry* (तम्बाकू के उद्योग पर कार्पोरेशनों के कमिश्नर की रिपोर्ट), Washington 1909, पृष्ठ २६६, जिसका हवाला डा० पाल टाफ़ेल ने अपनी पुस्तक *«Die nordamerikanischen Trusts und ihre Wirkungen auf den Fortschritt der Technik»* (उत्तरी अमरीका के ट्रस्ट और प्राविधिक प्रगति पर उनका प्रभाव – अनु०), Stuttgart 1913, पृष्ठ ४८ में दिया है।

** डा० पाल टाफ़ेल, उपरोक्त पुस्तक, पृष्ठ ४९।

और बड़ी फ़ैक्टरी से समझौता कर लिया। परिणाम यह हुआ कि दो "तिहरे गठजोड़े" हो गये, इनमें से हरेक की पूंजी चार से पांच करोड़ मार्क तक हो गयी। और ये "गठजोड़े" एक दूसरे के "निकट" आते जा रहे हैं, क़ीमतों के बारे में उनकी "मिलीभगत" रहने लगी है, आदि।*

प्रतियोगिता बदलकर इजारेदारी बन जाती है। परिणामस्वरूप उत्पादन के सामाजीकरण की दिशा में बड़ी भारी प्रगति होती है। विशेष रूप से प्राविधिक आविष्कारों और सुधारों की प्रक्रिया का सामाजीकरण हो जाता है।

यह चीज़ कारख़ाने वालों के बीच उस पुरानी खुली प्रतियोगिता से बिल्कुल भिन्न है जो इधर-उधर बिखरे हुए रहते थे और जिनका आपस में कोई सम्पर्क नहीं होता था और जो एक अनजाने बाज़ार के लिए माल तैयार करते थे। संकेंद्रण अब इस हद तक पहुंच गया है कि सारे देश के, या जैसा कि हम आगे देखेंगे, बहुत से देशों के, यहां तक कि सारी दुनिया के कच्चे माल के सभी स्रोतों का (जैसे लोहे के खनिज भंडारों का) मोटा-मोटा अनुमान लगाया जा सकता है। न केवल ऐसे तख़मीने बनाये जाते हैं, बल्कि इन ठिकानों पर बड़े-बड़े इजारेदार संघ अपना क़ब्ज़ा भी जमा लेते हैं। बाज़ारों की क्षमता का भी एक मोटा तख़मीना बनाया जाता है और संघ समझौता करके उन्हें आपस में "बांट" लेते हैं। होशियार कारीगरों को अपने हाथ में कर लिया जाता है, अच्छे से अच्छे इंजीनियरों को नौकर रख लिया जाता है। यातायात के साधनों पर क़ब्ज़ा कर लिया जाता है: जैसे अमरीका में रेलों पर और यूरोप और अमरीका में जहाज़ी कम्पनियों पर। अपनी

---

*Riesser, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, तीसरा संस्करण, पृष्ठ ५४७ तथा उसके आगे के पृष्ठ। अख़बारों में (जून १९१६ के) रिपोर्ट निकली है कि एक नया दानव ट्रस्ट बना है जो जर्मनी के रसायन उद्योग को एकबद्ध कसे जा रहा है।

साम्राज्यवादी मंज़िल में पूंजीवाद उत्पादन के पूर्णतम सामाजीकरण के द्वार पर आ पहुंचता है; वह पूंजीपतियों को मानो उनकी मर्ज़ी के विरुद्ध और अनजाने ही एक नयी समाज-व्यवस्था में खींच लाता है, जो पूर्ण खुली प्रतियोगिता से पूरे सामाजीकरण के बीच की संक्रमणकालीन समाज-व्यवस्था होती है।

उत्पादन सामाजिक हो जाता है, पर उसका फ़ायदा कुछ व्यक्ति ही उठाते हैं। उत्पादन के सामाजिक साधन कुछ लोगों की ही निजी सम्पत्ति बने रहते हैं। ऊपरी तौर पर खुली प्रतियोगिता का साधारण ढांचा तो बना रहता है, पर बाक़ी जनता पर कुछ थोड़े-से इजारेदारों का जूआ सौ गुना भारी, और भी तकलीफ़देह और असह्य हो उठता है।

जर्मन अर्थशास्त्री, केस्टनर ने एक किताब ख़ास तौर पर "कार्टेलों और बाहरी लोगों के बीच संघर्ष" के विषय पर लिखी है। बाहरी लोगों से उनका मतलब कार्टेलों के बाहर वाले कारख़ानेदारों से है। उन्होंने अपनी पुस्तक का नाम रखा है "अनिवार्य संगठन", पर पूंजीवाद को उसके असली रूप में पेश करने के लिए उन्हें, ज़ाहिर है, इजारेदार संघों के आगे अनिवार्य आत्म-समर्पण के बारे में लिखना चाहिए था। कम से कम उस सूची पर एक सरसरी दृष्टि डाल लेना शिक्षाप्रद है, जिसमें वे सब तरीक़े गिनाये गये हैं जिनका कि इजारेदार संघ "संगठन" के वर्तमान, नवीनतम तथा सभ्य संघर्ष में सहारा लेते हैं: (१) कच्चे माल की सप्लाई बंद कर देना (..."कार्टेल के अन्दर आने के लिए बाध्य करने का यह एक सबसे महत्वपूर्ण उपाय है"); (२) "समझौतों" के द्वारा मज़दूरों का मिलना बंद कर देना (अर्थात् पूंजीपतियों और ट्रेड-यूनियनों के बीच समझौते जिसके द्वारा ट्रेड-यूनियन अपने सदस्यों को केवल कार्टेल के कारख़ानों में ही काम करने की इजाज़त देते हैं); (३) माल की डिलीवरी को बंद कर देना; (४) व्यापार के रास्तों को रोक देना; (५) ख़रीदारों के साथ समझौते

जिनके कारण वे केवल कार्टेलों से ही व्यापार करने का वचन दे देते हैं; (६) व्यवस्थित रूप से क़ीमतें गिराना ("बाहरी" फ़र्मों को, यानी जो इजारेदारों की बात मानने से इनकार करें, तबाह कर देने के लिए कुछ दिनों तक माल को उसकी लागत से भी नीची दर पर बेचने में लाखों रुपये ख़र्च कर दिये जाते हैं। ऐसा कई बार हुआ है जब इसी उद्देश्य से बेन्ज़ीन की दर ४० मार्क से घटाकर २२ मार्क, यानी लगभग आधी, कर दी गयी थी!); (७) उधार देना बंद कर देना; (८) वहिष्कार करना।

अब यह छोटे और बड़े पैमाने के उद्योगों की, या प्राविधिक दृष्टि से बढ़े हुए और पिछड़े हुए कारख़ानों की प्रतियोगिता नहीं रह गयी। यहां हम देखते हैं कि जो कारख़ाने इजारेदारों की बात नहीं मानते, उनके जूए में अपना कंधा नहीं फंसाते, उनके इशारों पर नहीं नाचते, उन्हें इजारेदार गला घोंटकर मार डालना चाहते हैं। एक पूंजीवादी अर्थशास्त्री इस प्रक्रिया को किस भांति देखता है, यह इससे मालूम हो जाता है:

केस्टनर लिखते हैं: "विशुद्ध आर्थिक क्षेत्र में भी पुराने ढंग का व्यापारिक कामकाज बदलकर संगठनात्मक-सट्टेबाज़ी के कामकाज की तरफ़ बढ़ रहा है। सबसे ज़्यादा सफलता अब उस व्यापारी को नहीं मिलती जो अपने प्राविधिक और व्यावसायिक अनुभव के कारण ख़रीदार की आवश्यकता को सबसे अच्छी तरह समझ सकता हो और जो एक छिपी हुई मांग का पता लगा सकता हो और निहित मांग को सफलतापूर्वक "जगा" सकता हो। अब सफलता सट्टेबाज़ी की प्रतिभावाले (!) उस आदमी को मिलती है जो अलग-अलग कारख़ानों और बैंकों के बीच कुछ ख़ास संबंधों के संगठनात्मक विकास का, उनकी संभावनाओं का, पहले से ही अनुमान लगा सकता हो, या कम से कम उन्हें पहले से महसूस कर सकता हो..."

साधारण मानवी भाषा में इसका अर्थ यह है कि पूंजीवाद का विकास

अब ऐसी मंज़िल में आ पहुंचा है जब कि यद्यपि "राज" माल के उत्पादन का ही रहता है और वही आर्थिक जीवन का आधार माना जाता है, किन्तु, वास्तव में उसकी जड़ें खोखली हो चुकी हैं और अधिकांश मुनाफ़ा रुपये-पैसे की जोड़-तोड़ करनेवाले फ़रेबी "उस्तादों" की जेब में पहुंचता है। इन धोखेबाज़ियों और जोड़-तोड़ की बुनियाद में ऐसा उत्पादन है जिसका सामाजीकरण हो गया है; किन्तु मानवता की इस विशाल उन्नति से जिससे यह सामाजीकरण संभव हुआ है, फ़ायदा होता है... सट्टेबाज़ों को। इस बात पर हम बाद में विचार करेंगे कि किस प्रकार "इन्हीं कारणों से" पूंजीवादी साम्राज्यवाद के प्रतिक्रियावादी और निम्न-पूंजीवादी आलोचक "खुली", "शांतिपूर्ण" और "ईमानदार" प्रतियोगिता में **वापस** लौट जाने के सपने देखते हैं !

केस्टनर लिखते हैं : "कार्टेलों के बनने से क़ीमतों का दीर्घ काल के लिए बढ़ाया जाना अभी तक सिर्फ़ उत्पादन के सबसे महत्वपूर्ण साधनों के बारे में, विशेष करके कोयला, लोहा और पोटाशियम के बारे में ही, देखा गया है, लेकिन तैयार माल के सम्बन्ध में यह बात कभी नहीं देखी गयी है। इसी तरह, इस प्रकार क़ीमतों को बढ़ाने से मुनाफ़े में होनेवाली बढ़ती भी केवल उन्हीं उद्योगों तक सीमित रही है जो उत्पादन के साधनों को पैदा करते हैं। इस अवलोकन के साथ ही हम यह भी जोड़ दें कि उन उद्योगों को, जो कच्चे माल को (आधे तैयार माल को नहीं) तैयार करते हैं, कार्टेल बनने से तैयार माल के उद्योगों के हितों की बलि देकर अधिक मुनाफ़ों की शक्ल में लाभ ही नहीं पहुंचता है, बल्कि उन्होंने तैयार माल के उद्योगों के मुक़ाबले में एक **प्रभुत्वपूर्ण स्थान** भी प्राप्त कर लिया है, जो बात कि खुली प्रतियोगिता के ज़माने में नहीं थी।"*

जिन शब्दों पर हमने ज़ोर दिया है वे इस मामले के सार को

---

*केस्टनर, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ २५४।

प्रगट कर देते हैं जिसको पूंजीवादी अर्थशास्त्री इतना कम और इतनी अनिच्छा से मानते हैं, और जिससे अवसरवाद के आजकल के समर्थक, का० कौत्स्की की अगुवाई में, बचने की और पल्ला छुड़ाने की इतने ज़ोरों से कोशिश करते हैं। प्रभुता और उसके साथ-साथ चलनेवाली हिंसा – "पूंजीवादी विकास की नवीनतम अवस्था" के लाक्षणिक संबंध ऐसे ही हैं; सर्वशक्तिमान आर्थिक इजारेदारियों के बनने से अनिवार्य रूप में यही परिणाम हो सकता था और यही परिणाम हुआ भी है।

कार्टेलों द्वारा काम में लाये जानेवाले उपायों का एक उदाहरण हम और देंगे। कार्टेलों का उदय और इजारेदारियों का बनना वहां बेहद आसान होता है जहां कच्चे माल के सभी या मुख्य स्रोतों पर क़ब्ज़ा करना संभव हो। किन्तु यह मान लेना ग़लत होगा कि जिन उद्योगों में कच्चे माल के स्रोतों को हथिया लेना असंभव होता है, उनके अन्दर इजारेदारियां पैदा ही नहीं होतीं। उदाहरण के लिए, सीमेन्ट-उद्योग के लिए कच्चा माल सब जगह मिल सकता है। तो भी जर्मनी में यह उद्योग पूरी तरह कार्टेलों में जकड़ा हुआ है। सीमेन्ट बनानेवालों ने प्रादेशिक सिंडीकेट – जैसे दक्षिण जर्मनी का सिंडीकेट, राइन-वेस्टफ़ालिया का सिंडीकेट – आदि क़ायम कर लिये हैं। वे जो क़ीमतें तै करते हैं वे इजारेदारी क़ीमतें होती हैं: जैसे रेल के एक डिब्बे के लिए २३० से लगाकर २८० मार्क तक जबकि उसकी लागत सिर्फ़ १८० मार्क होती है। कारख़ाने १२ से १६ फ़ीसदी तक डिवीडेन्ड देते हैं और हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि आधुनिक सट्टेबाज़ी के "उस्ताद" अच्छी तरह जानते हैं कि डिवीडेन्ड के रूप में उन्हें जो कुछ मिलता है उसके अलावा और भी मोटा मुनाफ़ा किस तरह हथियाया जाता है। ऐसे मुनाफ़ेवाले उद्योग में प्रतियोगिता बंद करने के लिए इजारेदार तरह-तरह की तिकड़में भी करते हैं: वे अपने उद्योग की बुरी हालत के बारे में झूठी अफ़वाहें फैलाते हैं, अखबारों में बिना किसी का नाम दिये हुए

चेतावनियां निकाली जाती हैं, जैसे: "पूंजीपतियो, सीमेन्ट के उद्योग में अपनी पूंजी मत लगाओ!" अंत में, वे लोग "बाहरवालों" के (सिंडीकेट से बाहरवालों के) कारखानों को खरीद लेते हैं, और उन्हें ६०,००० – ८०,००० और यहां तक कि १,५०,००० मार्क तक "मुआवज़ा" दे देते हैं।* इजारेदारी हर जगह "छोटी-सी" रक़म देकर प्रतियोगियों को ख़रीद लेने से लेकर उनके खिलाफ़ बारूद का "इस्तेमाल" करने के अमरीकी तरीक़े तक किसी भी उपाय के बारे में कोई संकोच किये बिना हर जगह अपने लिए रास्ता साफ़ कर लेती है।

यह कथन कि कार्टेल संकटों को खत्म कर सकते हैं, उन पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों की फैलायी हुई मनगढ़ंत कहानी है जो हर क़ीमत पर पूंजीवाद को अच्छे रूप में दिखाने के लिए उत्सुक रहते हैं। इसके विपरीत, जब उद्योगों की **कुछ खास** शाखाओं में इजारेदारी पैदा हो जाती है तो वह **समूचे** पूंजीवादी उत्पादन में छिपी हुई अराजकता को और भी बढ़ा देती है तथा गहरा कर देती है। कृषि और उद्योगों के विकास की विषमता जो पूरे पूंजीवाद की एक विशेषता है, बढ़ जाती है। कार्टेलों में सबसे अधिक जकड़े हुए उद्योगों की, तथाकथित **भारी** उद्योगों की, विशेषकर लोहे और कोयले की विशेष अधिकारपूर्ण स्थिति उत्पादन के दूसरे क्षेत्रों में "व्यवस्थित संगठन को और भी कम कर देती है" – जैसा कि जीडेल्स नाम लेखक ने, जिसने "उद्योगों के साथ जर्मनी के बड़े बैंकों के सम्बंध" पर एक श्रेष्ठतम ग्रंथ लिखा है, स्वीकार किया है।**

---

* L. Eschwege, «*Die Bank*» पत्रिका में «*Zement*» (सीमेंट), १६०६, खण्ड १, पृष्ठ ११५ तथा उसके आगे के पृष्ठ।

** Jeidels, «*Das Verhältnis der deutschen Grossbanken zur Industrie mit besonderer Berücksichtigung der Eisenindustrie*» (उद्योगों के साथ जर्मनी के बड़े बैंकों के संबंध, विशेष रूप से लोहा उद्योग के प्रसंग में – अनु०), Leipzig, 1905, पृष्ठ २७१।

पूंजीवाद के एक अत्यंत निर्लज्ज समर्थक लिएफ़मैन ने लिखा है: "कोई आर्थिक व्यवस्था जितनी ही अधिक विकसित होती है, उतनी ही अधिक वह ख़तरे से भरे कारोबारों में या विदेशों में स्थित कारख़ानों में हाथ डालती है, ऐसे कारख़ाने जिनके विकसित होने में बहुत ज़्यादा समय लगता है, या फिर अंत में वह ऐसे कारख़ानों में हाथ डालती है जिनका महत्व केवल स्थानीय होता है।"* ज़्यादा ख़तरे का संबंध, दीर्घ काल की दृष्टि से, पूंजी की अपार वृद्धि के साथ है जो मानो छलककर विदेशों आदि की ओर प्रवाहित होने लगती है। साथ ही साथ, तेज़ी के साथ होनेवाली प्राविधिक प्रगति के कारण राष्ट्रीय अर्थतंत्र के विभिन्न क्षेत्रों में विषमता के तत्व अधिकाधिक गड़बड़ी बढ़ाने लगते हैं और अराजकता तथा संकट पैदा हो जाते हैं। लिएफ़मैन को यह मानने के लिए लाचार होना पड़ा है कि: "इस बात की पूरी संभावना है कि निकट भविष्य में ही मनुष्य-जाति को और भी महत्वपूर्ण प्राविधिक क्रांतियां देखनी पड़ें, जिनका आर्थिक व्यवस्था के संगठन पर भी प्रभाव पड़ेगा"... बिजली और हवाई यातायात ... "आम तौर पर बुनियादी आर्थिक परिवर्तनों के ऐसे युगों में सट्टेबाज़ी बड़े पैमाने पर होने लगती है।"**

हर प्रकार के संकट – ज़्यादातर आर्थिक संकट ही, लेकिन केवल ये ही नहीं – उत्पादन के संकेंद्रण और इजारेदारी की प्रवृत्ति को बहुत काफ़ी बढ़ा देते हैं। इस संबंध में १६०० के संकट के महत्व के बारे में, जिस संकट से, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, आधुनिक इजारेदारियों के इतिहास में एक नया अध्याय शुरू हुआ था, जीडेल्स के निम्नलिखित विचार अत्यंत शिक्षाप्रद हैं:

---

* Liefmann, *«Beteiligungs- und Finanzierungsgesellschaften»*, पृष्ठ ४३४।

** उपरोक्त पुस्तक, पृष्ठ ४६५-४६६।

"बुनियादी उद्योगों में दानवाकार कारख़ानों के साथ-साथ, १६०० के संकट के समय, बहुत से कारख़ाने इस ढंग से भी संगठित थे जिसे आज अप्रचलित माना जायेगा, 'विशुद्ध'" (संघों के बाहरवाले) "कारख़ाने जो औद्योगिक तेज़ी की लहर के साथ उठे थे। क़ीमतों के गिरने और मांग के कम होने से इन 'विशुद्ध' कारख़ानों की हालत बड़ी डांवांडोल हो उठी थी, जब कि विशालकाय संघबद्ध कारख़ानों पर या तो इस संकट का बिल्कुल ही असर न पड़ा था, या फिर पड़ा भी था, तो बहुत ही थोड़े समय के लिए। इसका परिणाम यह हुआ कि १८७३ के संकट की तुलना में १६०० के संकट की वजह से उद्योगों का कहीं ज़्यादा संकेंद्रण हो गया: १८७३ के संकट के कारण भी सबसे अच्छी तरह से लैस कारख़ानों का एक प्रकार का चुनाव हो गया था, किन्तु उस समय प्राविधिक विकास का स्तर नीचा होने के कारण यह चुनाव उन कारख़ानों को इजारेदारी की हालत में न पहुंचा सका जो संकट को सफलतापूर्वक पार कर आये थे। ऐसी स्थायी इजारेदारी उसकी अत्यंत जटिल प्रविधि, उसके व्यापक संगठन तथा उसमें लगी हुई विपुल पूंजी के कारण बहुत बड़े पैमाने पर लोहे तथा इस्पात और बिजली के आधुनिक उद्योगों के विशालकाय कारख़ानों में और इससे कम पैमाने पर इंजीनियरिंग उद्योग, धातु-उद्योग की कुछ शाखाओं, और यातायात आदि में पायी जाती है।"*

इजारेदारी! "पूंजीवादी विकास की नवीनतम अवस्था" का यह चरम रूप है। किन्तु यदि हम बैंकों की भूमिका पर ध्यान न दें तो आधुनिक इजारेदारियों की असली ताक़त और उनके महत्व का हमें बहुत ही अपर्याप्त, अधूरा और हलका अन्दाज़ा ही हो सकेगा।

---

* Jeidels, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ १०८।

२. बैंक और उनकी नयी भूमिका

बैंकों का मुख्य और मूल काम धन के भुगतान में बिचवानी करना है। ऐसा करते हुए वे निष्क्रिय द्रव्य पूंजी को सक्रिय पूंजी में बदल देते हैं, अर्थात् ऐसी पूंजी में जिससे मुनाफ़ा मिल सके, वे तरह-तरह का धन जमा करते हैं और उसे पूंजीपति वर्ग के हाथों में सौंप देते हैं।

जैसे-जैसे बैंकों का कारोबार विकसित होता है और बहुत थोड़े-से संस्थानों में संकेंद्रित हो जाता है, वैसे-वैसे बैंक छोटे-मोटे बिचवानों से बढ़कर शक्तिशाली इजारेदारियों का रूप धारण कर लेते हैं जिनके हाथ में उस देश के सभी पूंजीपतियों तथा छोटे मालिकों की लगभग समस्त द्रव्य पूंजी और उस देश के तथा कई देशों के उत्पादन के साधनों तथा कच्चे माल के स्रोतों का अधिकांश भाग होता है। अनेक छोटे-छोटे बिचवानों का मुट्ठी-भर इजारेदारों में परिवर्तित हो जाना पूंजीवाद के विकसित होकर पूंजीवादी साम्राज्यवाद का रूप धारण कर लेने की एक मूलभूत प्रक्रिया का द्योतक है; इसलिए हमें सबसे पहले बैंकों के कारोबार के संकेंद्रण पर विचार करना चाहिए।

१९०७-०८ में जर्मनी के उन ज्वाइंट-स्टाक बैंकों में, जिनमें से प्रत्येक के पास दस लाख मार्क से अधिक की पूंजी थी, जमा की गयी रक़म कुल मिलाकर ७,००,००,००,००० मार्क थी; १९१२-१३ में जमा की गयी यह रक़म बढ़कर ९,८०,००,००,००० मार्क हो गयी थी। पांच वर्ष में ४० प्रतिशत की वृद्धि; और २,८०,००,००,००० की इस वृद्धि में से २,७५,००,००,००० की वृद्धि ५७ ऐसे बैंकों में बंटी हुई थी जिनमें से प्रत्येक के पास १,००,००,००० मार्क की पूंजी थी। बड़े और छोटे बैंकों के बीच जमा की गयी रक़म का वितरण इस प्रकार था:*

---

* Alfred Lansburgh, *«Fünf Jahre deutsches Bankwesen»* (जर्मनी में बैंकों के कारोबार के पांच वर्ष—अनु०) *«Die Bank»* में, १९१३, अंक ८, पृष्ठ ७२८।

जमा की गयी कुल रक़म का प्रतिशत अनुपात

	बर्लिन के ६ बड़े बैंकों में	एक करोड़ मार्क से ज्यादा की पूंजी वाले दूसरे ४८ बैंकों में	दस लाख से लेकर एक करोड़ मार्क तक की पूंजी वाले ११५ बैंकों में	(दस लाख से कम मार्क की पूंजीवाले) छोटे बैंकों में
१६०७-०८	४७	३२.५	१६.५	४
१६१२-१३	४६	३६	१२	३

बड़े बैंक छोटे बैंकों को कारोबार से बाहर निकाले दे रहे हैं, इन बड़े बैंकों में से केवल नौ ही के हाथ में कुल जमा की गयी रक़म का लगभग आधा भाग केंद्रित है। परन्तु हमने तफ़सील की बहुत-सी महत्वपूर्ण बातों को छोड़ दिया है, उदाहरण के लिए यह बात कि कई छोटे-छोटे बैंक एक तरह से बड़े बैंकों की शाखा बनकर रह गये हैं, आदि। इसका उल्लेख हम आगे चलकर करेंगे।

शुल्ज़े-गैवर्नित्ज़ ने १६१३ के अंत में यह अनुमान लगाया था कि कुल मिलाकर जो लगभग १०,००,००,००,००० मार्क की रक़म बैंकों में जमा की गयी थी उसमें से ५,१०,००,००,००० मार्क बर्लिन के नौ बड़े बैंकों में जमा किये गये थे। केवल बैंकों में जमा की गयी रक़म को ही नहीं बल्कि बैंकों की कुल पूंजी को ध्यान में रखते हुए इस लेखक ने लिखा था : "१६०६ के अंत में बर्लिन के नौ बड़े बैंकों का, **उनसे सम्बद्ध बैंकों सहित**, ११,३०,००,००,००० मार्क पर, अर्थात् जर्मनी के बैंकों की कुल पूंजी के ८३ प्रतिशत भाग पर क़ब्ज़ा था। प्रशिया के राज्यीय रेलवे-प्रशासन के बराबर दर्जे पर "जर्मन बैंक" («Deutsche Bank»), **अपने सम्बद्ध बैंकों सहित**, जिसके क़ब्ज़े में लगभग ३,००,००,००,०००

मार्क हैं, पुराने विश्व में पूंजी के सबसे विशाल और साथ ही सबसे विकेंद्रित संचय का प्रतिनिधित्व करता है।"*

हमने "सम्बद्ध" बैंकों के हवाले पर ज़ोर इसलिए दिया है कि यह आधुनिक पूंजीवादी संकेंद्रण की एक सबसे महत्वपूर्ण लाक्षणिक विशेषता है। बड़े कारख़ाने, और विशेष रूप से बैंक, छोटे कारख़ानों को केवल पूरी तरह हड़प ही नहीं लेते हैं बल्कि उनकी पूंजी में "होल्डिंगें" हासिल करके, शेयर ख़रीदकर या शेयरों का विनिमय करके, ऋणों की एक शृंखला आदि, आदि उपायों द्वारा उन्हें "अपने में मिला लेते" हैं, उन्हें अपने अधीन कर लेते हैं और उन्हें "अपने" समूह या (यदि हम इस व्यवसाय की ठेठ शब्दावली का प्रयोग करें) अपने "कंसर्न" में ले आते हैं। प्रोफ़ेसर लिएफ़मैन ने लगभग ५०० पृष्ठ का एक बहुत मोटा "ग्रंथ" लिखा है जिसमें उन्होंने आधुनिक "होल्डिंग तथा फ़ाइनैन्स कम्पनियों" का वर्णन किया है;** पर दुर्भाग्यवश उस मूल सामग्री के साथ जिसे वह बहुधा पचा नहीं पाये हैं उन्होंने बहुत ही घटिया क़िस्म के अपने "सैद्धांतिक" विचार भी जोड़ दिये हैं। संकेंद्रण के सिलसिले में "होल्डिंग" की इस पद्धति का क्या परिणाम होता है इसका सबसे अच्छा विवरण जर्मनी के बड़े बैंकों के बारे में रीसेर की, जो स्वयं एक "बैंकवाले" हैं, पुस्तक में मिलता है। परन्तु उनकी तथ्य-सामग्री को जांचने से पहले हम "होल्डिंग" पद्धति का एक ठोस उदाहरण देंगे।

---

* Schulze-Gaevernitz, «*Grundriss der Sozialökonomik*» में «*Die deutsche Kreditbank*» (सामाजिक अर्थशास्त्र की रूपरेखा में जर्मनी के ऋण बैंक—अनु०), Tübingen 1915, पृष्ठ १२ तथा १३७।

** R. Liefmann, «*Beteiligungs- und Finanzierungsgesellschaften. Eine Studie über den modernen Kapitalismus und das Effectenwesen*», 1, Aufl., Jena 1909, पृष्ठ २१२।

"जर्मन बैंक" "समूह" बैंक का बड़ा कारोबार करनेवाले समूहों में यदि सबसे बड़ा नहीं तो सबसे बड़े समूहों में से एक ज़रूर है। इस समूह के सभी बैंक जिन मुख्य सूत्रों द्वारा आपस में बंधे हुए हैं उनका पता लगाने के लिए पहली, दूसरी तथा तीसरी कोटि की "होल्डिंगों" के बीच अंतर करना, या जिस बात को हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि पहली, दूसरी तथा तीसरी कोटि की निर्भरता ("जर्मन बैंक" पर छोटे बैंकों की) में अंतर करना आवश्यक है। इससे हमें निम्नलिखित चित्र मिलता है*:

		निर्भरता, पहली कोटि की	निर्भरता, दूसरी कोटि की	निर्भरता, तीसरी कोटि की
"जर्मन बैंक" की होल्डिंगें	स्थायी रूप से...	१७ बैंकों में	जिनमें से ९ हैं ३४ में	जिनमें से ४ हैं ७ में
	अनिश्चित काल के लिए ...	५ बैंकों में	–	–
	कभी-कभी ...	८ बैंकों में	जिनमें से ५ हैं १४ में	जिनमें से २ हैं २ में
कुल योग		३० बैंकों में	जिनमें से १४ हैं ४८ में	जिनमें से ६ हैं ९ में

"कभी-कभी" वाले उन आठ बैंकों में जिनकी "जर्मन बैंक" पर निर्भरता "प्रथम कोटि" की है, तीन विदेशी बैंक हैं: एक आस्ट्रियाई (*Wiener Bankverein*) और दो रूसी (साइबेरियन कमर्शियल बैंक और वैदेशिक

* Alfred Lansburgh, «*Die Bank*» में «*Das Beteiligungssystem im deutschen Bankwesen*» (जर्मनी के बैंक के कारोबार में होल्डिंग की पद्धति – अनु०), १९१०, १, पृष्ठ ५००।

व्यापारार्थ रूसी बैंक)। कुल मिलाकर "जर्मन बैंक" के समूह में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, आंशिक रूप से या पूर्णतः, ८७ बैंक हैं; और कुल पूंजी का अनुमान—उसकी अपनी और उन दूसरे बैंकों की जिनपर उसका नियंत्रण है—२ और ३ अरब मार्क के बीच में लगाया जाता है।

यह बात स्पष्ट है कि जो बैंक ऐसे समूह का मुखिया हो और जो राज्य के लिए ऋण जुटाने जैसे असाधारण रूप से बड़े तथा लाभदायक कारोबार को चलाने के लिए अपने से कुछ ही छोटे लगभग आधे दर्जन दूसरे बैंकों के साथ समझौते करता हो, वह "बिचवान" की हैसियत से बहुत बढ़ गया है और वह मुट्ठी-भर इजारेदारों का संघ बन गया है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में और बीसवीं शताब्दी के आरंभ में जर्मनी में बैंक के कारोबार का संकेंद्रण किस तेज़ी के साथ बढ़ा इसका पता निम्नलिखित आंकड़ों से चलता है जिन्हें हम संक्षिप्त रूप में रीसेर की पुस्तक से उद्धृत कर रहे हैं।

बर्लिन के छः बड़े बैंक

वर्ष	जर्मनी में शाखाएं	जमा करने के बैंक और विनिमय के दफ़्तर	जर्मनी के ज्वाइंट-स्टाक बैंकों में स्थायी होल्डिंगें	कुल संस्थान
१८९५	१६	१४	१	४२
१९००	२१	४०	८	८०
१९११	१०४	२७६	६३	४५०

हम तीव्र गति से ऐसे माध्यमों का एक घना जाल बढ़ता हुआ देखते हैं जो सारे देश में फला हुआ है, जो सारी पूंजी तथा सारी आय

को केंद्रित किये ले रहा है, हज़ारों बिखरे हुए आर्थिक कारोबारों को एक ही राष्ट्रीय पूंजीवादी अर्थतंत्र में, और फिर एक विश्व पूंजीवादी अर्थतंत्र में बदले दे रहा है। पूर्वोक्त उद्धरण में शुल्ज़े-गैवर्नित्ज़ ने वर्तमान पूंजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के व्याख्याकार की हैसियत से जिस "विकेंद्रीकरण" का उल्लेख किया है उसका अर्थ वास्तव में यह है कि पहले जो आर्थिक इकाइयां अपेक्षतः "स्वतंत्र" थीं, या कहना चाहिए, बिल्कुल स्थानीय थीं वे अधिकाधिक संख्या में एक ही केंद्र के आधीन आती जायें। वास्तव में यह **केंद्रीकरण** है, विशालकाय इजारेदारों की भूमिका, उनके महत्व तथा उनकी शक्ति को बढ़ाना है।

पुराने पूंजीवादी देशों में "बैंकों के कारोबार का यह जाल" और भी घना है। १६१० में ग्रेट ब्रिटेन तथा आयरलैंड में बैंकों की शाखाओं की कुल संख्या ७,१५१ थी। चार बड़े बैंक ऐसे थे जिनमें से हर एक की ४०० से अधिक (४४७ से ६८६ तक) शाखाएं थीं; चार बैंक ऐसे थे जिनकी हर एक की २०० से अधिक शाखाएं थीं और ग्यारह ऐसे थे जिनकी हर एक की १०० से अधिक शाखाएं थीं।

फ्रांस के **तीन** बहुत बड़े बैंकों ने, *Crédit Lyonnais, Comptoir National* और *Société Générale** ने, अपना कारोबार और अपनी शाखाओं का जाल इस प्रकार फैला रखा था:**

---

* "लिओन का ऋण बैंक", "हिसाब का राष्ट्रीय दफ़्तर", "जेनरल सोसायटी" – अनु०।

** Eugen Kaufmann, «*Das französische Bankwesen*», Tübingen, 1911, पृष्ठ ३५६ तथा ३६२।

वर्ष	शाखाओं और दफ़्तरों की संख्या			पूंजी, लाख फ़्रांकों में	
	प्रांतों में	पेरिस में	कुल	अपनी पूंजी	उधार ली हुई पूंजी
१८७०	४७	१७	६४	२,०००	४,२७०
१८९०	१९२	६६	२५८	२,६५०	१२,४५०
१९०९	१,०३३	१९६	१,२२९	८,८७०	४३,६३०

एक बड़े आधुनिक बैंक के "संबंधों" को बताने के लिए रीसेर ने «Disconto-Gesellschaft» नामक बैंक से भेजे जानेवाले और वहां आनेवाले पत्रों की संख्या के बारे में निम्नलिखित आंकड़े दिये हैं; यह बैंक जर्मनी के और दुनिया के सबसे बड़े बैंकों में से एक है (१९१४ में इसकी पूंजी ३०,००,००,००० मार्क थी):

	पत्र आये	पत्र भेजे गये
१८५२	६,१३५	६,२९२
१८७०	८५,८००	८७,५१३
१९००	५,३३,१०२	६,२६,०४३

पेरिस के *«Crédit Lyonnais»* नामक बड़े बैंक में १८७५ में २८,५३५ लोगों के खाते खुले हुए थे, १९१२ में यह संख्या बढ़कर ६,३३,५३९ हो गयी।*

ये सीधे-सादे आंकड़े शायद लम्बी-चौड़ी व्याख्याओं की अपेक्षा ज्यादा अच्छे ढंग से यह प्रकट कर देते हैं कि पूंजी का संकेंद्रण तथा बैंकों के

* Jean Lescure, *«L'épargne en France»* (फ़्रांस में बचत – अनु०), Paris, 1914, पृष्ठ ५२।

लेन-देन में वृद्धि के कारण किस प्रकार बैंकों का महत्व बुनियादी तौर पर बदलता जा रहा है। बिखरे हुए अलग-अलग पूंजीपति एक ही सामूहिक पूंजीपति का रूप धारण कर लेते हैं। जब तक कोई बैंक कुछ पूंजीपतियों के चालू खातों का हिसाब रखता है तब तक वह एक प्रकार से एक शुद्धतः प्राविधिक तथा पूर्णतः सहायक कार्य करता है। परन्तु जब यह कारोबार बेहद बढ़ जाता है तब हम देखते हैं कि मुट्ठी-भर इजारेदार पूरे पूंजीवादी समाज के सारे कारोबार को, वाणिज्यिक भी और औद्योगिक भी, अपनी इच्छा के आधीन कर लेते हैं ; क्योंकि अपने बैंक के कारोबार के फलस्वरूप स्थापित संबंधों, अपने चालू खातों और अन्य वित्तीय कारोबार के जरिये – उन्हें इस बात का मौक़ा मिलता है कि पहले तो वे विभिन्न पूंजीपतियों के बारे में **ठीक-ठीक पता लगा सकें** कि उनकी वित्तीय स्थिति क्या है, फिर उन्हें ऋण देना कम करके या बढ़ाकर, ऋण की सुविधा प्रदान करके या उसमें बाधा डालकर, उनपर **नियंत्रण रख सकें** और अंत में उनके भाग्य को **पूरी तरह अपने वश में कर लें**, उनकी आय निर्धारित करें, उन्हें पूंजी से वंचित कर दें, या उन्हें अपनी पूंजी बड़ी तेज़ी से तथा बेहद बढ़ा लेने दें, आदि।

हम अभी *«Disconto-Gesellschaft»* बैंक की ३०,००,००,००० मार्क की पूंजी का उल्लेख कर चुके हैं। इस वैंक की पूंजी में यह वृद्धि बर्लिन के दो सबसे बड़े बैंकों के बीच – *«Deutsche Bank»* (जर्मन बैंक) तथा *«Disconto»* के बीच – प्रमुख स्थान पाने के लिए होनेवाले संघर्ष की अनेक घटनाओं में से एक थी। १८७० में पहला वाला बैंक अभी नया-नया ही मैदान में आया था और उसकी पूंजी सिर्फ़ १,५०,००,००० मार्क की थी, जबकि दूसरे वाले की पूंजी ३,००,००,००० मार्क थी। १९०८ में पहले वाले की पूंजी २०,००,००,००० मार्क थी और दूसरे वाले की

१७,००,००,०००। १९१४ में पहले वाले न अपनी पूंजी बढ़ाकर २५,००,००,००० कर ली और दूसरे वाले ने एक और प्रथम कोटि के बैंक *«Schaaffhausenscher Bankverein»* के साथ मिलकर अपनी पूंजी बढ़ाकर ३०,००,००,००० मार्क कर ली। और ज़ाहिर है कि प्रमुखतम स्थान प्राप्त करने के इस संघर्ष के साथ ही इन दो बैंकों के बीच ज़्यादा टिकाऊ क़िस्म के "समझौते" भी ज़्यादा मौक़ों पर होते रहे। बैंकों के कारोबार के इस विकास से बैंकों के कारोबार के विशेषज्ञ, जो आर्थिक प्रश्नों को एक ऐसे दृष्टिकोण से देखते हैं, जो अत्यंत नरम तथा सतर्क पूंजीवादी सुधारवाद की सीमाओं से रत्ती भर भी आगे नहीं जाता, जिन निष्कर्षों पर पहुंचने पर मजबूर हुए हैं वे निम्नलिखित हैं :

«Disconto-Gesellschaft» की पूंजी बढ़कर ३०,००,००,००० मार्क तक पहुंच जाने पर टीका करते हुए *«Die Bank»* नामक जर्मन पत्रिका ने लिखा : "दूसरे बैंक भी यही रास्ता अपनायेंगे और आज आर्थिक दृष्टि से जर्मनी पर जिन तीन सौ लोगों का शासन है उनकी संख्या धीरे-धीरे घटते-घटते पचास, पच्चीस या इससे भी कम रह जायेगी। यह आशा नहीं की जा सकती कि संकेंद्रण की दिशा में यह नवीनतम प्रगति बैंकों के कारोबार तक ही सीमित रहेगी। अलग-अलग बैंकों के बीच जो घनिष्ठ संबंध हैं उनका परिणाम स्वाभाविक रूप से यह होता है कि वे औद्योगिक सिंडीकेट, जिनपर इन बैंकों की कृपादृष्टि रहती है, एक-दूसरे के साथ आते जाते हैं... एक दिन अचानक हमें यह देखकर आश्चर्य होगा कि हमारी आंखों के सामने ट्रस्टों के अलावा और कुछ नहीं है और हमारे सामने इस बात की आवश्यकता आ खड़ी होगी कि हम इन निजी इजारेदारियों के स्थान पर राज्यीय इजारेदारियों की स्थापना करें। परन्तु हम अपने आपको इसके अलावा और किसी बात के लिए दोष नहीं दे सकते कि हमने घटनाओं को अपने रास्ते पर

स्वच्छंद रूप से बढ़ने दिया, उनकी रफ़्तार स्टाकों में हेर-फेर करके कुछ तेज़ ज़रूर कर दी गयी थी।"*

यह पूंजीवादी पत्रकारिता की शक्तिहीनता का एक उदाहरण है, जो पूंजीवादी विज्ञान से केवल इस दृष्टि से भिन्न है कि पूंजीवादी विज्ञान कम ईमानदार है और वह समस्या के सार पर परदा डालने की कोशिश करता है, वह जंगल को पेड़ों की आड़ में छुपाने की कोशिश करता है। संकेंद्रण के परिणामों पर "आश्चर्य" प्रकट करना, पूंजीवादी जर्मनी की सरकार को, या पूंजीवादी "समाज" को ("अपने आपको") "दोष देना", और इस बात से कि स्टाकों तथा शेयरों के प्रचलन से कहीं संकेंद्रण की "रफ़्तार तेज़" न हो जाये उसी प्रकार डरना जैसे जर्मन "कार्टेल" विशेषज्ञ त्शिएर्शकी अमरीकी ट्रस्टों से डरता है और जर्मन कार्टेलों को इसलिए "ज़्यादा पसंद करते हैं" कि उनसे "संभव है कि ट्रस्टों की तरह प्राविधिक तथा आर्थिक प्रगति की रफ़्तार अत्यधिक तेज़ न हो"**—यह शक्तिहीनता नहीं तो और क्या है?

लेकिन जो हक़ीक़त है वह हक़ीक़त है। जर्मनी में ट्रस्ट हैं ही नहीं, वहां तो "बस" कार्टेल हैं—परन्तु जर्मनी पर ज़्यादा से ज़्यादा तीन सौ बड़े-बड़े पूंजीवालों का **शासन** है, और इनकी संख्या घटती जा रही है। कुछ भी हो, सभी पूंजीवादी देशों में, उनके बैंकों के कारोबार के क़ानूनों में अंतर होने के बावजूद, बैंक पूंजी के संकेंद्रण तथा इजारेदारियों के निर्माण की प्रक्रिया को बहुत गहरा और तेज़ कर देते हैं।

---

* A. Lansburgh, «*Die Bank*» में «*Die Bank mit den* 300 *Millionen*», 1914, 1, पृष्ठ ४२६।

** S. Tschierschky, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ १२८।

मार्क्स ने "पूंजी" में अब से पचास वर्ष पहले लिखा था कि बैंकों की पद्धति "सचमुच बही-खाते रखने की आम प्रणाली और उत्पादन के साधनों को सामाजिक पैमाने पर वितरित करने के रूप को प्रस्तुत करती है, परन्तु केवल रूप को ही"। (रूसी अनुवाद, खंड ३, भाग २, पृष्ठ १४४।) हमने बैंकों की पूंजी में वृद्धि, सबसे बड़े बैंकों की शाखाओं तथा कार्यालयों की संख्या में वृद्धि और उनमें खातों की संख्या में वृद्धि आदि के बारे में जो आंकड़े उद्धृत किये हैं उनसे **पूरे** पूंजीपति वर्ग की "बही-खाते रखने की इस आम प्रणाली" का एक ठोस चित्र हमारी आंखों के सामने आता है—और केवल पूंजीपति वर्ग की ही नहीं, क्योंकि बैंक, अस्थायी रूप से ही सही, तरह-तरह का पैसा जमा करते हैं—छोटे व्यापारियों का, दफ़्तरों के क्लर्कों का, और मज़दूर वर्ग के उच्च स्तर के बहुत ही अल्पसंख्यक लोगों का। "उत्पादन के साधनों का सब लोगों में वितरण" बाहर से देखने में आधुनिक बैंकों से **पैदा होता है**, जिनमें फ़्रांस के तीन से छः तक और जर्मनी के छः से आठ तक सबसे बड़े बैंक आते हैं और जिनके क़ब्ज़े में अरबों की पूंजी है। परन्तु **असलियत** में उत्पादन के साधन का वितरण "सब लोगों में" नहीं बल्कि निजी होता है, अर्थात् वह बड़ी पूंजी के, और मुख्यतः विशाल इजारेदार पूंजी के हितों के अनुकूल होता है, जो ऐसी परिस्थितियों में अपना कारोबार चलाती है जिसमें सर्वसाधारण अभाव का शिकार रहते हैं, जिसमें कृषि का पूरा विकास उद्योगों के विकास से बेहद पीछे रहता है, और स्वयं उद्योगों में भी "भारी उद्योग" उद्योगों की अन्य सभी शाखाओं को अपने आगे नतमस्तक रखता है।

पूंजीवादी अर्थतंत्र के समाजीकरण के मामले में बचत-बैंक और डाकखाने बैंकों से टक्कर लेने लगे हैं, वे ज़्यादा "विकेंद्रित" हैं अर्थात् उनका प्रभाव ज़्यादा जगहों में, ज़्यादा सुदूर स्थित स्थानों में और जनसंख्या के व्यापकतर क्षेत्रों में फैला हुआ है। बैंकों तथा बचत-बैंकों

में जमा की गयी रक़म में तुलनात्मक वृद्धि की छानबीन करने के लिए नियुक्त किये गये एक अमरीकी कमीशन द्वारा एकत्रित आंकड़े इस प्रकार हैं:*

जमा की गयी रक़म (अरब मार्कों में)

	इंगलैंड		फ़्रांस		जर्मनी		
	बैंक	बचत-बैंक	बैंक	बचत-बैंक	बैंक	ऋण सोसाइटियां	बचत-बैंक
१८८०	८.४	१.६	?	०.६	०.५	०.४	२.६
१८८८	१२.४	२.०	१.५	२.१	१.१	०.४	४.५
१६०८	२३.२	४.२	३.७	४.२	७.१	२.२	१३.६

चूंकि बचत-बैंक जमा की गयी रक़म पर ४ प्रतिशत और ४.२५ प्रतिशत व्याज देते हैं, इसलिए उन्हें अपनी पूंजी लगाने के लिए "लाभदायक" माध्यमों की खोज करनी पड़ती है, उन्हें हुंडियों और गिरवी आदि का काम करना पड़ता है। बैंकों तथा बचत-बैंकों का अंतर "धीरे-धीरे मिटता जाता है"। उदाहरण के लिए, बोहुम तथा एर्फ़ुर्ट के चैम्बर आफ़ कामर्स यह मांग करते हैं कि बचत-बैंकों के "शुद्धतः" बैंकों के कारोबार वाले कामों, जैसे हुंडियां भुनाने पर, हाथ डालने पर "रोक लगा दी जाये", वे मांग करते हैं कि डाकखानों के "बैंक के कारोबार" वाले कामों को सीमित कर दिया जाये।** बड़े-बड़े बैंकपतियों को शायद इस बात का

---

* *National Monetary Commission* के आंकड़े, «*Die Bank*» में उद्धृत, १६१०, १, पृष्ठ १२००।

** उपरोक्त पुस्तक, १६१३, पृष्ठ ८११, १०२२; १६१४, पृष्ठ ७१३।

डर है कि राज्यीय इजारेदारी एक अप्रत्याशित दिशा से उनसे आगे निकल जायेगी। परंतु यह बताने की ज़रूरत नहीं कि यह भय, एक प्रकार से, एक ही दफ़्तर के दो विभागों के मैनेजरों की प्रतिद्वंद्विता की अभिव्यक्ति से अधिक और कुछ नहीं है; क्योंकि एक तरफ़ तो बचत-बैंकों के हाथों में जो अरबों की रक़म सौंपी जाती है उसपर अंततः वास्तव में इन्हीं बड़े-बड़े बैंकपतियों का क़ब्ज़ा रहता है, और दूसरी तरफ़, पूंजीवादी समाज में राज्यीय इजारेदारी उद्योगों की किसी एक या दूसरी शाखा में इन करोड़पतियों की आय को बढ़ाने तथा सुनिश्चित बनाने का एक साधन मात्र होती है, जिनका दिवाला निकलनेवाला होता है।

पुराने ढंग के पूंजीवाद का, जिसमें खुली प्रतियोगिता का बोलबाला था, नये पूंजीवाद में, जिसमें इजारेदारी का राज्य होता है, बदल जाना, और बातों के अतिरिक्त इस बात में व्यक्त होता है कि स्टाक एक्सचेंज का महत्व घट गया है। *«Die Bank»* नामक पत्रिका लिखती है: "स्टाक एक्सचेंज अब परिचालन का वैसा अनिवार्य माध्यम नहीं रह गये हैं जैसा कि वे पहले थे जबकि बैंकों में अधिकांश नये शेयरों को अपने ग्राहकों के हाथ बेचने की सामर्थ्य पैदा नहीं हो पायी थी।"*

"'हर बैंक एक स्टाक एक्सचेंज होता है' और जो बैंक जितना ही बड़ा होता है और उसके हाथों में बैंक का कारोबार जितनी सफलतापूर्वक संकेंद्रित होता है, उतनी ही अधिक हद तक यह आधुनिक परिभाषा उसपर चरितार्थ होती है।"** "जबकि पहले, उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में, स्टाक एक्सचेंजों ने अपनी जवानी के जोश में" (यह "छुपा हुआ" संकेत १८७३ में स्टाक एक्सचेंज के बैठ जाने, कम्पनियां खड़ी

---

* *«Die Bank»*, १९१४, १, पृष्ठ ३१६।

** Dr. Oscar Stillich, *«Geld- und Bankwesen»*, Berlin, 1907, पृष्ठ १६९।

करने की शर्मनाक घटनाओं[7] आदि की ओर है) "जर्मनी के उद्योगीकरण के युग का श्रीगणेश किया था, आजकल बैंक और उद्योग 'अकेले ही' इस काम को कर लेते हैं। स्टाक एक्सचेंज पर हमारे बड़े बैंकों का प्रभुत्व पूर्णतः संगठित जर्मन औद्योगिक राज्य की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अपने आप काम करनेवाले आर्थिक नियमों का क्षेत्र यदि इस प्रकार संकुचित हो जाता है, और यदि बैंकों द्वारा सचेत रूप से नियमन का क्षेत्र बहुत बढ़ जाता है तो संचालन करनेवाले कुछ इने-गिने लोगों का राष्ट्रीय आर्थिक उत्तरदायित्व बहुत बढ़ जाता है।" यह बात जर्मन प्रोफ़ेसर शुल्ज़े-गैवर्नित्ज़* ने लिखी है, जो जर्मन साम्राज्यवाद के समर्थक हैं और जिन्हें सभी देशों के साम्राज्यवादी इस विषय का पंडित मानते हैं; और वह एक "छोटी-सी ब्यौरे की बात" को छिपाये रखने की कोशिश करते हैं, यानी इस बात को कि बैंकों द्वारा आर्थिक जीवन का "सचेत रूप से नियमन" इस बात में है कि मुट्ठी-भर "पूर्णतः संगठित" इजारेदार पब्लिक का ख़ून निचोड़ लेते हैं। पूंजीवादी प्रोफ़ेसर का काम यह नहीं होता कि वह सारी व्यवस्था के तमाम कल-पुर्ज़ों को खोलकर सबके सामने रख दे या बैंक के इजारेदारों के सारे हथकंडों को सबके सामने ज़ाहिर कर दे, बल्कि उसका काम तो उन्हें आकर्षक रूप में पेश करना होता है।

इसी प्रकार रीसेर, जो और भी प्रामाणिक अर्थशास्त्री हैं और स्वयं "बैंकवाले" हैं, अकाट्य तथ्यों को उल्टा-सीधा समझा देने के लिए निरर्थक शब्दों से खेलते हैं: "...स्टाक एक्सचेंजों में से उनकी वह विशेषता बिल्कुल ग़ायब होती जा रही है जो पूरे राष्ट्रीय अर्थतंत्र के लिए, और विशेष रूप से प्रतिभूतियों (सिक्योरिटियों) के परिचालन के लिए, नितांत

---

* Schulze-Gaevernitz, *«Grundriss der Sozialökonomik»* में *«Die deutsche Kreditbank»*, Tübingen, 1915, पृष्ठ १०१।

आवश्यक है–अर्थात् उनकी यह विशेषता कि वे उन आर्थिक हलचलों का, जो आकर उनमें केंद्रित होती हैं, एक अत्यंत नपा-तुला मापदंड ही नहीं होते बल्कि उन हलचलों का प्रायः बिल्कुल ही अपने आप काम करनेवाला नियामक-यंत्र भी होते हैं।"*

दूसरे शब्दों में पुराना पूंजीवाद, खुली प्रतियोगिता का पूंजीवाद, जिसके साथ उसके अनिवार्य नियामक-यंत्र के रूप में स्टाक एक्सचेंज होता था, लुप्त होता जा रहा है। उसका स्थान लेने के लिए एक नये पूंजीवाद का जन्म हो गया है, जिसमें एक संक्रमणकालीन वस्तु की विशेषताएं स्पष्ट हैं, खुली प्रतियोगिता और इजारेदारी का मेल। स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है: नया पूंजीवाद **किस चीज़ की ओर** "संक्रमित" हो रहा है? परन्तु पूंजीवादी विद्वान इस प्रश्न को उठाने से डरते हैं।

"तीस बरस पहले, एक-दूसरे से खुली प्रतियोगिता करके व्यापारी "मज़दूरों" के शारीरिक श्रम को छोड़कर अपने कारोबार से संबंधित नब्बे प्रतिशत आर्थिक काम स्वयं कर लेते थे। इस समय नब्बे प्रतिशत दिमाग़ी काम **पदाधिकारी** करते हैं। बैंकों का कारोबार इस विकास में सबसे आगे है।"** शुल्ज़े-गैवर्नित्ज़ की यह स्वीकारोक्ति हमारे सामने एक बार फिर यह सवाल खड़ा कर देती है: यह नया पूंजीवाद, साम्राज्यवाद की मंज़िल में पूंजीवाद, किस चीज़ की ओर संक्रमित हो रहा है? – – –

संकेंद्रण की प्रक्रिया के फलस्वरूप पूरे पूंजीवादी अर्थतंत्र में सबसे ऊपर जो थोड़े-से इने-गिने बैंक रह गये हैं, उनमें स्वाभाविक रूप से इजारेदारी समझौतों की दिशा में, **बैंकों का एक ट्रस्ट** बनाने की दिशा में, बढ़ने की प्रवृत्ति अधिकाधिक स्पष्ट रूप में दिखायी देती है। अमरीका

---

* Riesser, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, चौथा संस्करण, पृष्ठ ६२९।

** Schulze-Gaevernitz *«Grundriss der Sozialökonomik»* में *«Die deutsche Kreditbank»*, Tübingen, 1915, पृष्ठ १५१।

में नौ नहीं बल्कि **दो** बहुत बड़े बैंकों के हाथों में, राकफ़ेलर तथा मार्गन नामक अरबपतियों के बैंकों के हाथों में, ग्यारह अरब मार्क की पूंजी है।* जर्मनी में *«Disconto-Gesellschaft»* बैंक में *«Schaaffhausenscher Bankverein»* के विलय के बारे में, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं, स्टाक एक्सचेंज के हितों को व्यक्त करनेवाले मुखपत्र *«Frankfurter Zeitung»* ने निम्नलिखित शब्दों में टीका की:

"बैंकों के संकेंद्रण आंदोलन के कारण ऐसे संस्थानों का क्षेत्र संकुचित होता जा रहा है जिनसे ऋण मिल सकता है, और फलस्वरूप बैंकों के बहुत थोड़े से समूहों पर बड़े उद्योगों की निर्भरता बढ़ती जा रही है। उद्योगों तथा वित्तीय जगत के घनिष्ठ संबंधों को देखते हुए ऐसी औद्योगिक कम्पनियों की कामकाज की स्वतंत्रता, जिन्हें बैंक की पूंजी की आवश्यकता पड़ती है, सीमित हो गयी है। इस कारण बड़े उद्योग इस बात को मिश्रित भावनाओं के साथ देखते हैं कि बैंक ज़्यादा से ज़्यादा बड़े पैमाने पर अपने ट्रस्ट बनाने की दिशा में अग्रसर हो रहे हैं। वास्तव में हम कई बार बैंक का कारोबार करनेवाली बड़ी-बड़ी कम्पनियों के बीच ऐसे समझौतों की शुरूआत देख चुके हैं जिनका उद्देश्य प्रतियोगिता की शुरूआत को सीमित करना होता है।"**

बार-बार यही कहना पड़ता है कि बैंक के कारोबार के विकास का अंतिम रूप इजारेदारी है।

जहां तक बैंकों और उद्योगों के घनिष्ठ संबंध का सवाल है, तो यही वह क्षेत्र है जिसमें बैंकों की नयी भूमिका शायद सबसे ज़्यादा स्पष्ट रूप में अनुभव की जाती है। जब कोई बैंक किसी कारखानेदार की हुंडी का भुगतान करता है, या उसका चालू खाता खोलता है आदि, तो अलग-अलग

---

* *«Die Bank»*, १९१२, १, पृष्ठ ४३५।

** शुल्ज़े-गैवर्नित्ज़ द्वारा उद्धृत, उपरोक्त पुस्तक, पृष्ठ १५५।

तो ये सारे काम किसी भी प्रकार उस व्यवसायी की स्वतंत्रता को कम नहीं करते और इसमें बैंक की भूमिका एक सीधे-सादे बिचवान के अतिरिक्त और कुछ नहीं होती। परन्तु जब इस प्रकार के लेन-देन संख्या में बहुत बढ़ जाते हैं और एक स्थायी व्यवहार का रूप धारण कर लेते हैं, जब बैंक अपने हाथों में विपुल पूंजी "एकत्रित" कर लेते हैं, जब किसी कारख़ाने के चालू खाते का हिसाब-किताब रखने से बैंक अपने ग्राहक की आर्थिक दशा के बारे में ज़्यादा पूर्ण और ज़्यादा विस्तृत जानकारी प्राप्त करने की स्थिति में हो जाता है–और होता भी यही है–तो इसका परिणाम यह होता है कि औद्योगिक पूंजीपति और भी पूरी तरह बैंक पर निर्भर हो जाता है।

इसके साथ ही बैंकों और बड़े-बड़े औद्योगिक तथा वाणिज्यिक कारोबारों के बीच एक प्रकार का वैयक्तिक संबंध स्थापित हो जाता है, बैंक इन औद्योगिक तथा वाणिज्यिक कारोबारों के और ये कारोबार इन बैंकों के निरीक्षण मंडलों (या संचालक मंडलों) में अपने अपने संचालक नियुक्त करके या एक-दूसरे के शेयर ख़रीदकर एक-दूसरे में विलीन हो जाते हैं। जर्मन अर्थशास्त्री जीडेल्स ने पूंजी तथा कारोबारों के संकेंद्रण के इस रूप के बारे में अत्यंत विस्तृत आंकड़े संकलित किये हैं। बर्लिन के छः सबसे बड़े बैंकों का प्रतिनिधित्व अपने संचालकों के ज़रिये ३४४ औद्योगिक कम्पनियों में था, और ४०७ दूसरी कम्पनियों में इन बैंकों का प्रतिनिधित्व अपने बोर्ड के सदस्यों के ज़रिये था, यानी कुल मिलाकर ७५१ कम्पनियों में इनका प्रतिनिधित्व था। इसमें से २८९ कम्पनियां ऐसी थीं जिनमें से हर एक के निरीक्षण मंडल में उनके दो-दो प्रतिनिधि थे, या फिर उनके प्रतिनिधि इन मंडलों के अध्यक्ष थे। हमें इस प्रकार की औद्योगिक तथा वाणिज्यिक कम्पनियां उद्योगों की विविधतम शाखाओं में मिलती हैं: बीमा, यातायात, रेस्तोरां, थिएटर, कला उद्योग, आदि। दूसरी ओर इन छः बैंकों के निरीक्षण मंडलों में (१९१० में) इक्यावन सबसे बड़े उद्योगपति

थे, जिनमें क्रुप्प के, शक्तिशाली जहाज़रानी कंपनी «*Hapag*» (हैम्बर्ग-अमेरिकन लाइन) इत्यादि के संचालक शामिल थे। १८९५ से १९१० तक इन छः बैंकों में से हर एक ने सैकड़ों औद्योगिक कम्पनियों के (जिनकी संख्या २८१ से बढ़कर ४१९ तक पहुंच गयी) शेयरों और बांडों के लेन-देन में हिस्सा लिया।*

बैंकों तथा उद्योगों के इस "वैयक्तिक संबंध" को सरकार के साथ इन दोनों के "वैयक्तिक संबंध" से पूर्णता मिलती है। जीडेल्स ने लिखा है कि "निरीक्षण मंडलों में स्थान बड़ी आज़ादी के साथ पदवीधारी लोगों को और उन भूतपूर्व सरकारी अफ़सरों को भी दिये जाते हैं जो सरकारी पदाधिकारियों के साथ संबंध स्थापित कराने में बहुत काफ़ी सुविधा(!!) प्रदान कर सकते हैं"... "आम तौर पर हर बड़े बैंक के निरीक्षण मंडल में संसद का कोई सदस्य या बर्लिन नगरपालिका का कोई सदस्य होता है।"

कहना चाहिए कि बड़ी-बड़ी पूंजीवादी इजारेदारियों का निर्माण इसलिए "स्वाभाविक" तथा "अलौकिक" सभी प्रकार के उपायों से पूरी तेज़ी के साथ आगे बढ़ रहा है। कुछ सौ वित्त-सम्राटों के बीच, जिनका आधुनिक पूंजीवादी समाज पर शासन है, श्रम का विभाजन सुव्यवस्थित ढंग से हो रहा है:

"कुछ बड़े-बड़े उद्योगपतियों के कार्य-क्षेत्र के इस प्रकार विस्तृत होते जाने" (बैंकों के बोर्डों में शामिल होने, आदि) "और बैंकों के प्रांतीय संचालकों के कार्य-क्षेत्र में किसी निश्चित औद्योगिक प्रदेश को दिला देने के साथ-साथ बड़े बैंकों के संचालकों में अलग-अलग क्षेत्रों के विशेषज्ञ बनने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। वास्तव में इस प्रकार की विशेषज्ञता प्राप्त करने की प्रवृत्ति की कल्पना उसी दशा में की जा सकती है जब

---

*जीडेल्स, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक; रीसेर, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक।

बैंकों का कारोबार बहुत बड़े पैमाने पर चलाया जाये, और विशेष रूप से उस दशा में जब उद्योगों के साथ बैंकों के व्यापक संबंध हों। श्रम का यह विभाजन दो दिशाओं में होता है: एक तरफ़ तो उद्योगों के साथ संबंध का पूरा क्षेत्र उसके विशेष काम के रूप में किसी एक संचालक के सिपुर्द कर दिया जाता है; दूसरी ओर हर संचालक कई अलग-अलग कारोबारों के, या उद्योगों की किसी एक ही शाखा में कारोबारों के किसी एक समूह के, या समान हित रखनेवाले कारोबारों के निरीक्षण का काम अपने ज़िम्मे ले लेता है"... (पूंजीवाद अलग-अलग कारोबारों के संगठित **निरीक्षण** की मंज़िल में पहुंच चुका है) ... "कोई जर्मनी के उद्योगों का, या केवल पश्चिमी जर्मनी के उद्योगों का विशेषज्ञ बन जाता है" (जर्मनी का पश्चिमी भाग सबसे अधिक उद्योगीकृत है), "कोई दूसरा विदेशी राज्यों तथा विदेशी उद्योगों के साथ संबंध रखने और उद्योगपतियों के बारे में जानकारी का विशेषज्ञ बन जाता है और कोई स्टाक एक्सचेंजों का विशेषज्ञ बन जाता है, आदि। इसके अलावा बैंकों के हर संचालक के सिपुर्द बहुधा कोई ख़ास इलाक़ा या उद्योग की कोई विशेष शाखा कर दी जाती है; कोई संचालक मुख्यतः बिजली कम्पनियों के निरीक्षण मंडलों में काम करता है, तो दूसरा रसायन, बियर या चुक़ंदर की शकर के कारख़ानों के निरीक्षण मंडलों में, और तीसरा कुछ फुटकर औद्योगिक कारख़ानों के निरीक्षण मंडलों में, पर इसके साथ ही इनमें से हर एक बीमा कम्पनियों के निरीक्षण मंडलों में भी काम करता है ... सारांश यह कि इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि बड़े बैंकों के कामकाज के विस्तार तथा उसकी विविधता में वृद्धि के साथ ही उनके संचालकों के बीच श्रम का विभाजन भी बढ़ जाता है, जिसका उद्देश्य (और परिणाम), कहना चाहिए, यह होता है कि उन्हें शुद्धतः बैंक के कारोबार के स्तर से कुछ ऊंचा उठाकर ज्यादा अच्छे विशेषज्ञ, उद्योगों की आम समस्याओं और उद्योगों की हर शाखा की विशेष समस्याओं के बारे में ज्यादा अच्छी तरह फ़ैसला कर सकनेवाले बना दिया जाय और

इस प्रकार उन्हें यह क्षमता प्रदान की जाये कि वे उस बैंक विशेष के औद्योगिक प्रभाव-क्षेत्र के भीतर ज़्यादा अच्छी तरह काम कर सकें। इस पद्धति को और अधिक बल प्रदान करने के लिए बैंक अपने निरीक्षण मंडलों में ऐसे लोगों को चुनने की कोशिश करते हैं जो औद्योगिक समस्याओं के विशेषज्ञ हों, जैसे उद्योगपति, भूतपूर्व पदाधिकारी, विशेषतः ऐसे अफ़सर जो पहले रेलवे या खानों के विभागों में काम कर चुके हों," आदि।*

फ़्रांस के बैंक के कारोबार में भी हम कुछ ही भिन्न रूप में यह पद्धति देखते हैं। उदाहरण के लिए, «*Crédit Lyonnais*» बैंक ने, जो फ़्रांस के तीन सबसे बड़े बैंकों में से एक है, वित्तीय शोधकार्य सेवा (*service des études financières*) की स्थापना की है जिसमें पचास से अधिक इंजीनियर, सांख्यिकीविद, अर्थशास्त्री तथा वकील आदि स्थायी रूप से नौकर हैं। इसपर उसे प्रति वर्ष छः-सात लाख फ़्रांक खर्च करने पड़ते हैं। यह सेवा आठ विभागों में बंटी हुई है: एक विभाग विशेष रूप से औद्योगिक संस्थानों से संबंधित जानकारी एकत्रित करने का काम करता है, दूसरा आम आंकड़ों का अध्ययन करता है, तीसरा रेलों और जहाज़ की कम्पनियों का विशेषज्ञ है, चौथा प्रतिभूतियों का, पांचवां वित्तीय रिपोर्टों का, और इसी प्रकार अन्य विभाग हैं।**

इसका परिणाम एक तरफ़ तो यह होता है कि बैंकों की तथा उद्योगों की पूंजी निरंतर बढ़ती हुई हद तक एक-दूसरे में मिलती जाती है, या जिसे न० इ० बुखारिन ने बहुत उचित शब्दों में यों कहा है कि वे एक-दूसरे में विलीन होती जाती हैं और दूसरी तरफ़ बैंक बढ़कर सचमुच "सर्वव्यापी स्वरूप" वाली संस्थाओं का रूप धारण कर लेते हैं। इस प्रश्न

---

* जीडेल्स, उपरोक्त पुस्तक, पृष्ठ १५७।

** «*Die Bank*» में फ़्रांसीसी बकों के विषय में यूजीन कौफ़मन का एक लेख, १९०९,२, पृष्ठ ८५१ तथा उसके आगे के पृष्ठ।

के बारे में हम जीडेल्स द्वारा प्रयुक्त शब्दों को ही उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं, जिन्होंने इस विषय का अध्ययन सबसे अच्छी तरह किया है :

"औद्योगिक संबंधों के कुल योग की छानबीन करने से उद्योगों की ओर से काम करनेवाले वित्तीय संस्थानों का **सर्वव्यापी स्वरूप** प्रकट हो जाता है। दूसरी तरह के बैंकों से भिन्न और इस विषय के साहित्य में कभी-कभी उठायी जानेवाली इस मांग के प्रतिकूल कि बैंकों को एक ही प्रकार के कारोबार में या उद्योगों की किसी एक शाखा की ओर ही अपना ध्यान केंद्रित करना चाहिए ताकि उनके पैर जम जायें – बड़े बैंक इस बात की कोशिश कर रहे हैं कि वे स्थानों तथा उद्योगों की शाखाओं की दृष्टि से औद्योगिक कारोबारों के साथ अपने संबंध यथासंभव अधिकतम वैविध्यपूर्ण बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं और अलग-अलग कारखानों के ऐतिहासिक विकास के कारण विभिन्न स्थानों तथा उद्योगों की विभिन्न शाखाओं के बीच पूंजी के वितरण में जो असमानता उत्पन्न हो गयी है उसे वे दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं।" "एक प्रवृत्ति तो है उद्योगों के साथ संबंधों को आम बना देने की; दूसरी प्रवृत्ति है उन्हें टिकाऊ तथा घनिष्ठ बनाने की। इन छः बड़े-बड़े बैंकों में ये दोनों ही प्रवृत्तियां पूरी तरह तो नहीं पर काफ़ी हद तक और बराबर परिमाण में पायी जाती हैं।"

अक्सर औद्योगिक तथा वाणिज्यिक क्षेत्र बैंकों की "आतंकवादी हरकतों" की शिकायत करते हैं। और यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि इस प्रकार की शिकायतें सुनने में आती हैं, क्योंकि बड़े बैंक "हुक्म चलाते" हैं, जैसा कि निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा। १९ नवम्बर, १९०१ को बर्लिन के तथाकथित "डी" बैंकों में से एक बड़े बैंक ने (चार सबसे बड़े बैंकों के नाम "डी" अक्षर से शुरू होते हैं) जर्मनी के केंद्रीय उत्तर-पश्चिम सीमेंट सिंडीकेट के संचालक-मंडल को इन

शब्दों में एक पत्र लिखा: "आपने इस माह की १८ तारीख़ के एक अख़बार में जो नोटिस प्रकाशित की है उससे हमें जो कुछ मालूम हुआ है उसके अनुसार हमें इस संभावना को ध्यान में रखना होगा कि आपके सिंडीकेट की अगली आम बैठक में, जो इस माह की ३० तारीख़ को होनेवाली है, शायद कुछ ऐसे क़दम उठाने का फ़ैसला किया जाये जिनके कारण संभवत: आपके कारोबार में ऐसे परिवर्तन हो जायें जो हमें स्वीकार्य नहीं हैं। हम अत्यंत खेद है कि इन कारणों से हम आगे चलकर आपको वह ऋण देना बंद कर देने पर बाध्य हैं जो आपको अब तक दिया जाता रहा है ... परन्तु यदि इस बैठक में ऐसे क़दम उठाने का फ़ैसला न किया जाये जो हमें अस्वीकार्य हैं, और हमें भविष्य के लिए इस विषय में उचित आश्वासन मिल जायें, तो हम आपके साथ नये ऋण की मंजूरी की बातचीत आरंभ करने के लिए बिल्कुल तैयार हैं।"*

वास्तव में यह छोटी पूंजी की वही पुरानी शिकायत है कि बड़ी पूंजी उसे दबाती है, पर इस उदाहरण में तो एक पूरा सिंडीकेट "छोटी" पूंजी की श्रेणी में आ गया! छोटी और बड़ी पूंजी का पुराना संघर्ष विकास की एक नयी तथा अत्यधिक ऊंची मंज़िल पर दुबारा शुरू किया जा रहा है। यह बात समझ में आती है कि बड़े बैंकों के कारोबार, जिनकी क़ीमत कई-कई अरब है, ऐसे साधनों से प्राविधिक उन्नति की रफ़्तार को तेज़ कर सकते हैं जिनकी तुलना पिछले ज़माने के साधनों से करना असंभव है। उदाहरण के लिए बैंक प्राविधिक शोधकार्य की विशेष सोसायटियां स्थापित करते हैं और ज़ाहिर है कि केवल "मित्र" औद्योगिक कारख़ाने ही उनके काम से लाभ उठा सकते हैं। बिजली की रेलों की शोध संस्था, वैज्ञानिक तथा प्राविधिक शोध की केंद्रीय ब्यूरो, आदि इसी श्रेणी में आती हैं।

स्वयं बड़े बैंकों के संचालक इस बात को देखने से नहीं चूक सकते

---

* Dr. Oscar Stillich, «*Geld- und Bankwesen*», Berlin 1907, पृष्ठ १४८।

कि राष्ट्रीय अर्थतंत्र की नयी परिस्थितियों की रचना हो रही है; पर इन घटनाओं के आगे वे लाचार हैं।

जीडेल्स लिखते हैं: "जिस किसी ने भी पिछले कुछ वर्षों में बड़े बैंकों के संचालकों तथा निरीक्षण मंडल के सदस्यों के पदों पर आसीन लोगों में किये गये परिवर्तनों को ध्यान से देखा है उसने इस बात को अवश्य देखा होगा कि ताक़त धीरे-धीरे ऐसे लोगों के हाथों में पहुंचती जा रही है जो उद्योगों के आम विकास में बड़े बैंकों के सक्रिय हस्तक्षेप को आवश्यक और बढ़ते हुए महत्व को समझते हैं। इन नये लोगों तथा बैंकों के पुराने संचालकों के बीच इस विषय पर कारोबारी और बहुधा वैयक्तिक ढंग के मतभेद बढ़ते जा रहे हैं। सवाल यह है कि उद्योगों में इस हस्तक्षेप से बैंकों को ऋण देनेवाली संस्थाओं के रूप में हानि पहुंचेगी या नहीं, क्या एक ऐसे कार्यक्षेत्र में प्रवेश करने के लिए, जिसका कि ऋण दिलाने में उनकी एक बिचवान की भूमिका के साथ कोई संबंध नहीं है और जो बैंकों को एक ऐसे क्षेत्र में लिये जा रहा है जहां उनके लिए पहले कभी की अपेक्षा औद्योगिक उतार-चढ़ावों की अंधी शक्तियों की लपेट में आ जाने का खतरा बहुत बढ़ जाता है, वे परखे हुए सिद्धांतों और एक निश्चित मुनाफ़े की बलि नहीं दे रहे हैं। पुराने बैंक संचालकों में से बहुतों की यही राय है, जबकि अधिकांश नौजवान लोग उद्योगों में सक्रिय हस्तक्षेप को उतनी ही बड़ी आवश्यकता समझते हैं जितनी कि वह आवश्यकता थी जिसने आधुनिक बड़े उद्योगों के साथ-साथ बड़े-बड़े बैंकों और आधुनिक औद्योगिक बैंक-कार्य को जन्म दिया था। ये दोनों पक्ष केवल एक बात पर सहमत हैं: वह यह कि बड़े बैंकों की इन नयी गतिविधियों में न तो कोई दृढ़ सिद्धांत हैं न कोई ठोस लक्ष्य।"*

पुराने पूंजीवाद के दिन पूरे हुए। नया पूंजीवाद किसी चीज़ की ओर

---

* जीडेल्स, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ १८३-१८४।

एक संक्रमण का द्योतक है। ज़ाहिर है कि इजारेदारी और खुली प्रतियोगिता का "मेल बिठाने" के उद्देश्य से "दृढ़ सिद्धांतों और किसी ठोस लक्ष्य" को ढूंढ़ना बिल्कुल बेकार है। "संगठित" पूंजीवाद के समर्थक, शुल्ज़े-गैवर्नित्ज़, लिएफ़मैन तथा ऐसे ही दूसरे "सिद्धांतवेत्ता" उसकी ख़ूबियों का जो सरकारी तौर पर गुणगान करते हैं उसके मुक़ाबले में व्यावहारिक लोगों की स्वीकारोक्ति में एक-दूसरे ही स्वर की गूंज है।

बड़े बैंकों की "नयी गतिविधियां" ठीक-ठीक किस काल में अंतिम रूप से स्थापित हुईं? जीडेल्स ने इस महत्वपूर्ण प्रश्न का काफ़ी सही-सही उत्तर दिया है।

"बैंकों तथा औद्योगिक कारख़ानों के वे पारस्परिक संबंध जिनका सार नया है, जिनके रूप नये हैं और जिनकी अभिव्यक्ति के माध्यम भी नये हैं, अर्थात् जिनकी अभिव्यक्ति का माध्यम वे बड़े-बड़े बैंक हैं जो केंद्रित तथा विकेंद्रित दोनों ही आधारों पर संगठित हैं,–ये संबंध पिछली शताब्दी के अंतिम दशक से पहले लाक्षणिक आर्थिक घटना मुश्किल से ही बन पाये थे। एक एतबार से तो इन संबंधों के आरंभ होने की तारीख़ सन् १८९७ में निर्धारित की जा सकती है, जिस साल महत्वपूर्ण 'विलय' हुए थे और बैंकों की औद्योगिक नीति से मेल खाने के लिए विकेंद्रित संगठन का नया रूप पहली बार प्रचलित किया गया था। यह प्रारंभिक तिथि इसके भी बाद निर्धारित की जा सकती है क्योंकि १९०० का आर्थिक संकट ही था जिसने उद्योगों तथा बैंकों के कारोबार के संकेंद्रण की प्रक्रिया की रफ़्तार को अत्यधिक तेज़ कर दिया और उसे बहुत उग्र रूप प्रदान किया, उस प्रक्रिया को सुसंगठित बनाया, उद्योगों के साथ उनके संबंध को पहली बार बड़े बैंकों की वास्तविक इजारेदारी में परिवर्तित कर दिया और इस संबंध को अधिक घनिष्ठ तथा अधिक सक्रिय बना दिया।"*

---

*उपरोक्त पुस्तक, पृष्ठ १८१।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी का आरंभ उस मोड़ का द्योतक है जहां से पुराना पूंजीवाद नये पूंजीवाद की दिशा में, आम तौर पर पूंजी का प्रभुत्व वित्तीय पूंजी के प्रभुत्व की दिशा में मुड़ गया।

३. वित्तीय पूंजी तथा वित्तीय अल्पतंत्र

हिल्फ़र्डिंग लिखते हैं, "उद्योगों में लगी हुई पूंजी में उस भाग का अनुपात निरंतर बढ़ता जाता है जिसपर उसका उपयोग करनेवाले उद्योगपतियों का स्वामित्व नहीं होता। वे केवल बैंकों के माध्यम से ही उसका उपयोग कर पाते हैं, जो कि उनके लिए पूंजी के मालिक होते हैं। दूसरी ओर बैंक को अपनी निधि का अधिकाधिक भाग उद्योगों में लगाना पड़ता है। इस प्रकार बैंकपति निरंतर बढ़ती हुई हद तक एक औद्योगिक पूंजीपति में परिवर्तित होता जाता है। बैंक की इस पूंजी को, अर्थात् उस पूंजी को जो द्रव्य के रूप में होती है, जो इस प्रकार वास्तव में औद्योगिक पूंजी में परिवर्तित हो जाती है, मैं 'वित्तीय पूंजी' कहता हूं।" "वित्तीय पूंजी वह पूंजी होती है जिसपर नियंत्रण बैंकों का रहता है और जिसे इस्तेमाल उद्योगपति करते हैं।"*

यह परिभाषा इस एतबार से अधूरी है कि इसमें एक अत्यंत महत्वपूर्ण बात के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है: उत्पादन तथा पूंजी के संकेंद्रण का इस हद तक बढ़ना जहां पहुंचकर इस संकेंद्रण की परिणति इजारेदारी में होती है, और हुई भी है। परन्तु अपनी पूरी पुस्तक में, विशेष रूप से जिस अध्याय से यह परिभाषा ली गयी है उससे पहलेवाले दो अध्यायों में, हिल्फ़र्डिंग ने **पूंजीवादी इजारेदारियों** की भूमिका पर ज़ोर दिया है।

उत्पादन का संकेंद्रण; उससे उत्पन्न होनेवाली इजारेदारियां; बैंकों का उद्योगों के साथ मिल जाना या उनका एक दूसरे में विलीन हो

---

*रु० हिल्फ़र्डिंग, "वित्तीय पूंजी", मास्को, १९१२, पृष्ठ ३३८-३३९।

जाना – यह है वित्तीय पूंजी के उत्थान का इतिहास और यही इस शब्द का सार है।

अब हमें यह बताना है कि माल के उत्पादन तथा निजी सम्पत्ति की आम परिस्थितियों के अंतर्गत, किस प्रकार पूंजीवादी इजारेदारियों का "व्यापारिक कामकाज" अनिवार्य रूप से वित्तीय अल्पतंत्र के प्रभुत्व का रूप धारण कर लेता है। यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि पूंजीवादी जर्मन – और केवल जर्मन ही नहीं – विज्ञान के रीसेर, शुल्ज़े-गैवर्नित्ज़, लिएफ़मैन आदि जैसे सारे के सारे प्रतिनिधि साम्राज्यवाद तथा वित्तीय पूंजी के समर्थक हैं। अल्पतंत्र के निर्माण में "कौनसे कल-पुर्ज़े किस तरह काम करते हैं", उसके तरीक़े क्या हैं, उसकी "निष्कलंक तथा पापपूर्ण" आय कितनी है, संसदों के साथ उसके संबंध क्या हैं, आदि, आदि बातों का रहस्योद्घाटन करने के बजाय वे उसपर परदा डालने तथा मुलम्मा चढ़ाने की कोशिश करते हैं। वे इन "उलझे हुए प्रश्नों से कतराने के लिए लम्बे-चौड़े तथा गोलमोल फ़िक़रों का इस्तेमाल करते हैं, बैंकों के संचालकों की "उत्तरदायित्व की भावना" को जागृत करते हैं, प्रशिया के अधिकारियों की "कर्त्तव्यपरायणता" की प्रशंसा करते हैं, इजारेदारियों के "निरीक्षण" तथा "नियमन" के लिए प्रस्तुत किये गये संसद के विधेयकों की सरासर हास्यास्पद छोटी-छोटी ब्योरे की बातों का गूढ़ अध्ययन करते हैं, और ऐसे सिद्धांतों के साथ खिलवाड़ करते हैं जिसका एक उदाहरण प्रोफ़ेसर लिएफ़मैन द्वारा निर्धारित निम्नलिखित वैज्ञानिक परिभाषा है: **"वाणिज्य एक ऐसा व्यवसाय है जिसका उद्देश्य है: माल एकत्रित करना, उसके भंडार भरना और उसे उपलब्ध बनाना"*** (मोटे अक्षरों का प्रयोग प्रोफ़ेसर साहब ने स्वयं किया है) ... इससे यह निष्कर्ष निकलेगा कि वाणिज्य का अस्तित्व आदिम मनुष्य के ज़माने में भी था,

---

* R. Liefmann, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ ४७६।

जिसे विनिमय का तनिक भी ज्ञान नहीं था, और समाजवाद के अंतर्गत भी उसका अस्तित्व रहेगा!

परन्तु वित्तीय अल्पतंत्र के भयानक शासन से संबंधित भयानक तथ्य इतने ज्वलंत हैं कि सभी पूंजीवादी देशों में, अमरीका में, फ़्रांस तथा जर्मनी में, एक पूरा साहित्य ऐसा पैदा हो गया है जो **पूंजीवादी** दृष्टिकोण से लिखा गया है, पर जिसमें फिर भी इस अल्पतंत्र का काफ़ी सच्चा चित्र तथा उसकी आलोचना – जो स्वाभाविक रूप से निम्न-पूंजीवादी ढंग की है – मिलती है।

"होल्डिंग की पद्धति" को, जिसका उल्लेख संक्षेप में हम ऊपर कर चुके हैं, आधारशिला बनाया जाना चाहिए। जर्मन अर्थशास्त्री हेमैन ने, जो शायद इस विषय की ओर ध्यान आकर्षित करानेवाले पहले व्यक्ति थे, इसके सार का वर्णन इस प्रकार किया है:

"कारोबार का प्रधान, मुख्य कम्पनी" (शब्दशः "मां कम्पनी") "पर नियंत्रण रखता है; यह कम्पनी अधीन कम्पनियों" ("बेटी कम्पनियों") "पर शासन करती है और ये अधीन कम्पनियां दूसरी अधीन कम्पनियों" ("नाती-नातिन कम्पनियों") "पर अपना नियंत्रण रखती हैं, और यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है। इस प्रकार अपेक्षाकृत बहुत थोड़ी पूंजी से ही उत्पादन के अत्यंत विस्तृत क्षेत्रों पर प्रभुत्व रखना संभव होता है। वास्तव में, यदि ५० प्रतिशत पूंजी का अपने हाथ में होना किसी कम्पनी को अपने नियंत्रण में रखने के लिए काफ़ी होता है तो कारोबार के प्रधान को दूसरी श्रेणी की अधीन कम्पनियों में अस्सी लाख की पूंजी पर नियंत्रण रखने के लिए केवल दस लाख की पूंजी की आवश्यकता होगी। और यदि इस 'गंठजोड़' को और बढ़ाया जाये तो दस लाख की पूंजी से एक करोड़ साठ लाख, तीन करोड़ बीस लाख और इसी प्रकार और अधिक पूंजी पर नियंत्रण रखना संभव है।"*

* Hans Gideon Heymann, «*Die gemischten Werke im deutschen Grosseisengewerbe*», Stuttgart, 1904, पृष्ठ २६८-२६९।

वास्तव में अनुभव यह बताता है कि किसी कम्पनी के कारोबार का निर्देशन करने के लिए उसके केवल ४० प्रतिशत शेयरों पर अपना स्वामित्व रखना काफ़ी होता है,* क्योंकि कुछ छोटे-छोटे बिखरे हुए शेयरहोल्डरों के लिए, व्यवहारतः, शेयरहोल्डरों की आम मीटिंगों आदि में आना असंभव होता है। शेयरों के स्वामित्व का "जनवादीकरण", जिससे पूंजीवादी कुतर्की और सामाजिक-जनवादी कहे जानेवाले अवसरवादी यह आशा करते हैं (या कहते हैं कि वे आशा करते हैं) कि उससे "पूंजी का जनवादीकरण" होगा, छोटे पैमाने के उत्पादन की भूमिका तथा उसके महत्व को बल मिलेगा, आदि, वह वास्तव में वित्तीय अल्पतंत्र की शक्ति को बढ़ाने के अनेक उपायों में से एक है। और हां, यही कारण है कि अधिक उन्नत, अर्थात् अधिक पुराने और अधिक "अनुभवी" पूंजीवादी देशों में क़ानून द्वारा छोटी रक़म के शेयर जारी करने की इजाज़त है। जर्मनी में क़ानून द्वारा एक हज़ार मार्क से कम रक़म के शेयर जारी करने की इजाज़त नहीं है, और जर्मन वित्तीय जगत के थैलीशाह बड़ी ईर्ष्या के साथ इंगलैंड को देखते हैं जहां एक पौंड (२० मार्क, लगभग १० रूबल) के शेयर जारी करने की इजाज़त है। सीमेन्स ने, जो जर्मनी का एक सबसे बड़ा उद्योगपति तथा "वित्त-सम्राट" है, ७ जून १९०० को राइखस्टाग में कहा कि "एक पौंड का शेयर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का आधार है।"** साम्राज्यवाद के बारे में इस व्यापारी की समझ उस कुख्यात लेखक की अपेक्षा ज्यादा गहरी और ज्यादा "मार्क्सीय" है जिसे रूसी मार्क्सवाद का एक संस्थापक[8] समझा

---

* Liefmann, «*Beteiligungsgesellschaften*» आदि, प्रथम संस्करण, पृष्ठ २५८।

** Schulze-Gaevernitz, «*Grdr. d. S.-Oek.*», V. 2, पृष्ठ ११०।

जाता है और जिसका यह मत है कि साम्राज्यवाद एक राष्ट्र विशेष की एक बुरी आदत है...

पर "होल्डिंग की पद्धति" इजारेदारों की शक्ति को बेहद बढ़ाने का ही काम नहीं करती, वह उन्हें इस बात के भी योग्य बनाती है कि वे पब्लिक को धोखा देने के लिए बेखटके तरह-तरह की गंदी और चोट्टेपने की तिकड़में कर सकें, क्योंकि "मां कम्पनी" के संचालकों पर क़ानूनी तौर पर "बेटी कम्पनी" की कोई ज़िम्मेदारी नहीं होती, जिसे "स्वतंत्र" समझा जाता है और जिसके **माध्यम से** वे **कुछ भी** "उलट-फेर कर सकते हैं।" यहां हम मई १९१४ की *«Die Bank»* नामक समीक्षा-पत्रिका से लिया गया एक उदाहरण दे रहे हैं:

"कैसेल स्थित 'स्प्रिंग स्टील कम्पनी' कुछ वर्ष पहले जर्मनी का एक अत्यंत लाभप्रद कारोबार समझी जाती थी। बुरी व्यवस्था के कारण उसका डिवीडेंड १५ प्रतिशत से गिरते-गिरते कुछ भी नहीं रह गया। जैसा कि मालूम हुआ इस कम्पनी के बोर्ड ने शेयरहोल्डरों से परामर्श किये बिना ही अपनी एक 'बेटी कम्पनी' 'हासिया लिमिटेड' को, जिसके पास केवल कुछ लाख मार्क की मूल पूंजी थी, **साठ लाख मार्क** का ऋण दिया था। इस ऋण का उल्लेख, जो 'मां कम्पनी' की पूंजी के लगभग तिगुने के बराबर था, उसके देयादेय-फलक में कहीं नहीं किया गया। इस बात का उल्लेख न करना बिल्कुल क़ानूनी था और उसे पूरे दो वर्ष तक छिपाये रखा जा सकता था क्योंकि इससे कम्पनी क़ानून का कोई उल्लंघन नहीं होता था। उसके निरीक्षण-मंडल का अध्यक्ष, जिसने उत्तरदायी प्रधान की हैसियत से इस झूठे देयादेय-फलक पर हस्ताक्षर किये थे, उस समय कैसेल के चैम्बर आफ़ कामर्स का अध्यक्ष था और अभी तक है। शेयरहोल्डरों को इस 'हासिया लिमिटेड' को ऋण दिये जाने की बात का पता बहुत बाद में जाकर उस समय लगा जब यह सिद्ध हो चुका था कि यह एक भूल थी"... (लेखक को यह शब्द उद्धरण-चिन्हों के

बीच में लिखना चाहिए था)... "और 'स्प्रिंग स्टील' के शेयरों का भाव लगभग १०० प्रतिशत गिर चुका था, क्योंकि जो लोग इस बात को जानते थे वे अपने शेयर निकाल रहे थे...

..."**देयादेय-फलक में हाथ की सफ़ाई दिखाने के इस लाक्षणिक उदाहरण से**, जो ज्वाइंट स्टाक कम्पनियों में एक **आम बात** है, यह स्पष्ट हो जाता है कि इनके संचालक-मंडल निजी व्यापारियों की अपेक्षा ज्यादा बेधड़क होकर खतरनाक सौदों में हाथ डालने को क्यों तैयार रहते हैं। देयादेय-फलक तैयार करने के आधुनिक तरीक़ों के कारण साधारण शेयरहोल्डरों से संदिग्ध सौदों को छुपाना ही संभव नहीं होता बल्कि इससे वे लोग, जिनका इन सौदों से सबसे गहरा संबंध होता है, समय रहते अपने शेयर बेचकर असफल सट्टेबाज़ी के दुष्परिणामों से साफ़ बच भी जाते हैं जबकि निजी व्यापारी जो कुछ भी करता है उसमें वह अपने आपको जोखिम में डालता है...

"बहुतेरी ज्वाइंट-स्टाक कम्पनियों के देयादेय-फलक हमें मध्य युग की उन पाण्डुलिपियों की याद दिलाते हैं जिनमें ऊपर दिखायी देनेवाले लेख को मिटाने पर ही उनके नीचे एक दूसरा लेख दिखायी देता था जिससे उस अभिलेख के वास्तविक अर्थ का पता चलता था।" (ये पाण्डुलिपियां चर्मपत्र पर लिखे गये ऐसे अभिलेख होते थे जिनमें मूल लेख को मिटाकर उसके ऊपर दूसरा लेख लिख दिया जाता था।)

"देयादेय-फलकों को ऐसा बना देने का कि कोई उनका मतलब ही न निकाल सके, सबसे सीधा-सादा और, इसलिए, सबसे आम तरीक़ा यह है कि 'बेटी कम्पनियां' क़ायम करके—या ऐसी कम्पनियों को क़ब्ज़े में करके—एक ही कारोबार को कई हिस्सों में बांट दिया जाये। विविध—क़ानूनी तथा ग़ैर-क़ानूनी—उद्देश्यों के लिए इस पद्धति की उपयोगिता इतनी

स्पष्ट है कि बड़ी कम्पनियों में शायद ही कोई ऐसी होगी जो इस पद्धति को इस्तेमाल न करती हो।"*

इस तरीक़े का व्यापक रूप से प्रयोग करनेवाली एक विशाल इजारेदार कम्पनी के उदाहरण के रूप में लेखक प्रख्यात "जनरल एलेक्ट्रिक कम्पनी" का उल्लेख करता है (जिसका उल्लेख हम आगे चलकर फिर करेंगे)। १९१२ में यह हिसाब लगाया गया था कि १७५ से २०० तक दूसरी कम्पनियों में इस कम्पनी के हिस्से थे, ज़ाहिर है उसका उनपर प्रभुत्व था और इस प्रकार कुल मिलाकर लगभग १५०,००,००,००० मार्क की पूंजी पर उसका नियंत्रण था।**

नियंत्रण के सारे नियम, देयादेय-फलकों का प्रकाशन, एक निश्चित ढांचे के अनुसार देयादेय-फलकों का तैयार किया जाना, बही-खातों की खुली जांच आदि वे सारी बातें व्यर्थ सिद्ध होती हैं जिनके बारे में नेकनीयत प्रोफ़ेसर तथा अधिकारी – अर्थात् वे लोग जिनमें पूंजीवाद की रक्षा करने तथा उसे आकर्षक रूप देने की नेकनीयत कूट कूटकर भरी होती है – सर्वसाधारण के सम्मुख भाषण देते हैं। क्योंकि निजी सम्पत्ति पर कोई उंगली नहीं उठा सकता और किसी को भी शेयर ख़रीदने, बेचने, बदलने या गिरवी रखने आदि से रोका नहीं जा सकता।

बड़े-बड़े रूसी बैंकों में यह "होल्डिंग की पद्धति" किस हद तक विकसित हो चुकी है इसका अनुमान ई० अगाह्द द्वारा दिये गये आंकड़ों से लगाया जा सकता है, जो पंद्रह वर्ष तक रूसी-चीनी बैंक के एक पदाधिकारी थे और जिन्होंने मई १९१४ में एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसका नाम

---

* L. Eschwege, *«Die Bank»* में *«Tochtergesellschaften»* (बेटी कम्पनियां – अनु०), १९१४, १, पृष्ठ ५४५।

** Kurt Heinig, *«Neue Zeit»* में *«Der Weg des Elektrotrusts»* (बिजली ट्रस्ट का मार्ग–अनु०), 1912, 30 Jahrg, 2, पृष्ठ ४८४।

"बड़े बैंक और विश्वव्यापी मंडी"* पूर्णतः उपयुक्त नहीं था। लेखक ने बड़े-बड़े रूसी बैंकों को दो मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया है: (क) वे बैंक जो "होल्डिंग पद्धति" के अंतर्गत आते हैं, और (ख) "स्वतंत्र" बैंक–परन्तु यहां बिना किसी आधार के "स्वतंत्रता" का अर्थ विदेशी बैंकों से स्वतंत्र होना लगाया गया है। लेखक ने पहली श्रेणी के बैंकों को तीन उप-श्रेणियों में विभाजित किया है: (१) जर्मन होल्डिंग, (२) ब्रिटिश होल्डिंग, और (३) फ़्रांसीसी होल्डिंग; यह विभाजन उन्होंने उल्लिखित देश विशेष के बड़े विदेशी बैंकों की "होल्डिंगों" तथा उनके प्रभुत्व को दृष्टिगत रखते हुए किया था। लेखक ने बैंकों की पूंजी को "उत्पादक ढंग से" लगी हुई पूंजी (औद्योगिक तथा वाणिज्यिक कारोबारों में) तथा "सट्टेबाज़ी के ढंग से" लगी हुई पूंजी में (स्टाक एक्सचेंज तथा वित्तीय कारोबार में) विभाजित किया है, उन्होंने अपने निम्न-पूंजीवादी-सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण यह मान लिया है कि पूंजीवाद के अंतर्गत पहले ढंग से लगायी गयी पूंजी को दूसरे ढंग से लगायी गयी पूंजी से अलग करना और दूसरे ढंग का उन्मूलन कर देना संभव है।

उन्होंने जो आंकड़े दिये हैं वे इस प्रकार हैं:

---

* E. Agahd, «*Grossbanken und Weltmarkt. Die wirtschaftliche und politische Bedeutung der Grossbanken im Weltmarkt unter Berücksichtigung ihres Einflusses auf Russlands Volkswirtschaft und die deutsch-russischen Beziehungen*», Berlin 1914. (बड़े बैंक और विश्वव्यापी मंडी। विश्वव्यापी मंडी में बड़े बैंकों का आर्थिक तथा राजनीतिक महत्व, रूस के राष्ट्रीय अर्थतंत्र पर उनके प्रभाव तथा जर्मन-रूसी संबंधों के प्रसंग में।–अनु०)

बैंकों के आदेय

(अक्तूबर-नवम्बर १९१३ की रिपोर्टों के अनुसार)

लाख रूबलों में

रूसी बैंकों के समूह	लगी हुई पूंजी		
	उत्पादक ढंग से	सट्टेबाज़ी के ढंग से	कुल
क १) चार बैंक: साइबेरियाई कामर्शियल बैंक, रूसी बैंक, इंटरनेशनल बैंक और डिस्काउन्ट बैंक	४,१३७	८,५९१	१२,७२८
क २) दो बैंक: कामर्शियल एंड इंडस्ट्रियल और रूसी-ब्रिटिश	२,३९३	१,६९१	४,०८४
क ३) पांच बैंक: रूसी-एशियाई, सेंट पीटर्सबर्ग प्राइवेट, अज़ोव-दोन, यूनियन मास्को, रूसी-फ़्रेंच कामर्शियल . . .	७,११८	६,६१२	१३,७३०
कुल (११ बैंक): क) =	१३,६४८	१६,८९४	३०,५४२
ख) आठ बैंक : मास्को व्यापारी, वोल्गा-कामा, जुंकर एंड कम्पनी, सेंट पीटर्सबर्ग कामर्शियल (भूतपूर्व वैवेलबर्ग), मास्को बैंक (भूतपूर्व रियाबुशीन्स्की), मास्को डिस्काउन्ट, मास्को कामर्शियल, मास्को प्राइवेट . . .	५,०४२	३,९११	८,९५३
कुल (१९ बैंक) :	१८,६९०	२०,८०५	३९,४९५

इन आंकड़ों के अनुसार बड़े बैंकों के पास "कार्यवाहक" पूंजी के रूप में लगभग चार अरब रूबल की जो रक़म थी, उसका **तीन-चौथाई से अधिक भाग**, अर्थात् तीन अरब से अधिक, ऐसे बैंकों के हाथों में था जो वास्तव में विदेशी बैंकों की केवल "बेटी कम्पनियां" थीं, और वह भी मुख्यतः पेरिस के बैंकों (वह प्रख्यात त्रिगुट: *«Union Parisienne»*, *«Paris et Pays-Bas»* तथा *«Société Générale»*) की और बर्लिन के बैंकों (विशेषतः *«Deutsche Bank»* और *«Disconto-Gesellschaft»*) की। रूस के दो सबसे बड़े बैंकों ने, रूसी (वैदेशिक व्यापार का रूसी बैंक) और इंटरनेशनल (सेंट पीटर्सबर्ग इंटरनेशनल कामर्शियल बैंक) ने, "तीन-चौथाई जर्मन पूंजी के सहारे" १६०६ और १९१२ के बीच अपनी पूंजी ४,४०,००,००० रूबल से बढ़ाकर ६,८०,००,००० रूबल और अपनी संरक्षित निधि १,५०,००,००० रूबल से बढ़ाकर ३,६०,००,००० रूबल कर ली। इनमें से पहला बैंक बर्लिन *«Deutsche Bank»* के "समूह" का अंग है और दूसरा बर्लिन *«Disconto-Gesellschaft»* का। हमारे सुयोग्य अगाह्द-महोदय इस बात पर बहुत नाराज़ हैं कि अधिकांश शेयर बर्लिन के बैंकों के हाथों में हैं और इस कारण रूसी शेयरहोल्डर लाचार हैं। स्वाभाविक बात है कि जो देश पूंजी का निर्यात करता है वह दूध-मलाई खुद अपने लिए रखता है: उदाहरण के लिए, जब बर्लिन *«Deutsche Bank»* साइबेरियाई कामर्शियल बैंक के शेयर बर्लिन के बाज़ार में लाया तो उसने वास्तव में पूरे साल भर तक उन्हें अपनी जेब में रखा और उसके बाद उन्हें १०० के १९३ के भाव बेच दिया, अर्थात् उनके अंकित मूल के लगभग दुगने भाव पर और इस प्रकार लगभग ६०,००,००० रूबल का मुनाफ़ा कमाया, जिसे हिल्फ़र्डिंग "सौदा पटानेवाले का मुनाफ़ा" कहते हैं।

हमारे लेखक ने सेंट पीटर्सबर्ग के मुख्य बैंकों की कुल "क्षमता" ८,२३,५०,००,००० रूबल, लगभग ८.२५ अरब रूबल, आंकी

है और "होल्डिंगों" का अनुमान, बल्कि कहना चाहिए कि इस बात का अनुमान कि उनपर किस हद तक विदेशी बैंकों का प्रभुत्व है, उन्होंने इस प्रकार लगाया है: फ़्रांसीसी बैंक – ५५ प्रतिशत; अंग्रेज़ – १० प्रतिशत; जर्मन – ३५ प्रतिशत। लेखक ने अनुमान लगाया है कि ८,२३,५०,००,००० रूबल की इस कुल सक्रिय पूंजी में से ३,६८,७०,००,००० रूबल, अर्थात् ४० प्रतिशत से अधिक, "प्रोदुगोल" तथा "प्रोदामेत" नामक दो सिंडीकेटों के – और तेल, धातु तथा सीमेंट के उद्योगों के सिंडीकेटों के – हिस्से में आती है। इस प्रकार पूंजीवादी इजारेदारियों के निर्माण से रूस में बैंकों की तथा उद्योगों की पूंजी के एक में मिल जाने की दिशा में भी बहुत प्रगति हुई है।

वित्तीय पूंजी जो थोड़े-से लोगों के हाथों में संकेंद्रित होती है और जो वास्तव में इजारेदारी-सी होती है, कम्पनियां खोलकर, शेयर जारी करके और राज्यीय ऋणों आदि द्वारा बेशुमार मुनाफ़ा कमाती है, जो लगातार बढ़ता ही जाता है, वह वित्तीय अल्पतंत्र के प्रभुत्व को और मज़बूत बनाती है और इजारेदारों के फ़ायदे के लिए पूरे समाज से चौथ वसूल करती है। हम यहां पर अमरीकी ट्रस्टों के "व्यापार" के तरीक़ों के असंख्य उदाहरणों में से एक उदाहरण दे रहे हैं जिसे हिल्फ़र्डिंग ने उद्धृत किया है: १८८७ में हैवमेयर ने पंद्रह छोटी-छोटी कम्पनियों को मिलाकर, जिनकी कुल पूंजी ६५,००,००० डालर थी, शकर ट्रस्ट की स्थापना की। अमरीकियों की शब्दावली में, इस पूंजी में उचित मात्रा में "पानी मिलाकर" ट्रस्ट की पूंजी को ५,००,००,००० डालर तक बढ़ाया गया। आगे चलकर होनेवाले इजारेदारी मुनाफ़ों को ध्यान में रखते हुए ही इस प्रकार "पूंजी को बढ़ा-चढ़ाकर" घोषित किया गया था, बिल्कुल उसी प्रकार जैसे भविष्य में होनेवाले इजारेदारी मुनाफ़ों की आशा में "यूनाइटेड स्टेट्स स्टील कार्पोरेशन" कच्चे लोहे की यथासंभव अधिक से अधिक खानों को खरीदता जा रहा है। वास्तव में,

शकर ट्रस्ट ने इजारेदारी क़ीमतें निश्चित कीं जिसके फलस्वरूप उसे इतना मुनाफ़ा हुआ कि वह "पानी मिलाकर" **सात-गुनी** बढ़ा ली गयी पूंजी पर १० प्रतिशत, अर्थात् **स्थापना के समय लगायी गयी वास्तविक पूंजी पर लगभग ७० प्रतिशत डिवीडेंड दे सका!** १६०६ में शकर ट्रस्ट की पूंजी ६,००,००,००० डालर थी। बाईस वर्ष में उसने अपनी पूंजी दस-गुनी से अधिक बढ़ा ली थी।

फ़्रांस में "वित्तीय अल्पतंत्र" के प्रभुत्व ने जो रूप धारण किया वह इससे थोड़ा ही भिन्न था (लीज़िस द्वारा लिखित "फ़्रांस में वित्तीय अल्पतंत्र के ख़िलाफ़", इस विख्यात पुस्तक का पांचवां संस्करण १६०८ में प्रकाशित हुआ था)। बांड जारी करने के मामले में वहां के चार सबसे शक्तिशाली बैंकों की आपेक्षिक नहीं बल्कि "पूर्ण इजारेदारी" है। वास्तव में यह "बड़े बैंकों का ट्रस्ट" है। और इजारेदारी के कारण बांड जारी करने से इजारेदारी मुनाफ़े सुनिश्चित हो जाते हैं। आम तौर पर ऋण लेनेवाले देश को ऋण की रक़म के ६० प्रतिशत भाग से अधिक नहीं मिलता, शेष १० प्रतिशत बैंकों तथा अन्य दलालों को चला जाता है। बैंकों को ४०,००,००,००० फ़्रांक के रूसी-चीनी ऋण से जो मुनाफ़ा हुआ वह ८ प्रतिशत था; ८०,००,००,००० फ़्रांक के रूसी (१६०४) ऋण से १० प्रतिशत मुनाफ़ा हुआ; और ६,२५,००,००० फ़्रांक के मोरोक्को के (१६०४) ऋण से १८.७५ प्रतिशत मुनाफ़ा हुआ। पूंजीवाद ने अपना विकास बहुत थोड़ी-सी सूदख़ोरी की पूंजी से आरंभ किया था और वह अपने विकास का अंत सूदख़ोरी की विपुल पूंजी के साथ कर रहा है। लीज़िस ने कहा है: "फ़्रांसीसी यूरोप के सूदख़ोर हैं।" पूंजीवाद के इस रूपांतरण के कारण आर्थिक जीवन की सभी परिस्थितियों में गंभीर परिवर्तन हो रहे हैं। जनसंख्या में कोई कमी-बढ़ती न होने और उद्योग, वाणिज्य तथा जहाज़रानी में गतिरोध आ जाने की दशा में "देश" सूदख़ोरी से अमीर बन सकता

है। "पचास आदमी, जिनके पास ८०,००,००० फ़्रांक की पूंजी हो, चार बैंकों में जमा २,००,००,००,००० फ़्रांक की पूंजी पर नियंत्रण रख सकते हैं।" "होल्डिंग पद्धति" का भी, जिससे हम परिचित हो चुके हैं, यही परिणाम होता है। उदाहरण के लिए, *«Société Générale»*, जो सबसे बड़े बैंकों में से एक है, अपनी "बेटी कम्पनी" "मिस्री शकर कारखानों" के लिए ६४,००० बांड जारी करता है। ये बांड १५० प्रतिशत पर जारी किये जाते हैं, अर्थात् हर फ़्रांक पर बैंक को ५० सेंटीम का लाभ होता है। बाद में मालूम हुआ कि नयी कम्पनी के डिवीडेंड झूठे हैं और "पब्लिक" को ६ से १० करोड़ फ़्रांक तक का नुक़सान हुआ। "«Société Générale» का एक संचालक 'शुगर रिफ़ाइनरीज़' के संचालक-मंडल का सदस्य था।" लेखक का इस निष्कर्ष पर पहुंचने पर बाध्य होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि "फ़्रांसीसी गणतंत्र एक वित्तीय राजतंत्र है", "वह वित्तीय अल्पतंत्र के पूर्ण प्रभुत्व का द्योतक है; अखबारों और सरकार पर वित्तीय अल्पतंत्र का ही प्रभुत्व है।"*

प्रतिभूतियां जारी करने से, जो कि वित्तीय पूंजी के मुख्य कामों में से एक है, जिस असाधारण रूप से ऊंची दर पर मुनाफ़ा मिलता है उसका वित्तीय अल्पतंत्र के विकास तथा उसे सुदृढ़ बनाने में बहुत बड़ा हाथ होता है। जर्मन पत्रिका *«Die Bank»* लिखती है: "देश में इस प्रकार का एक भी कारोबार नहीं है जिसमें उसके लगभग बराबर भी मुनाफ़ा होता हो जितना कि विदेशों के लिए ऋण जुटाने के काम से मिलता है।"**

---

* Lysis, *«Contre l'oligarchie financière en France»* ("फ़्रांस में वित्तीय अल्पतंत्र के खिलाफ़"—अनु०), ५वां संस्करण, पेरिस १९०८, पृष्ठ ११, १२, २६, ३९, ४०, ४८।

** «Die Bank» १९१३, अंक ७, पृष्ठ ६३०।

"बैंक के किसी दूसरे कारोबार से उतना मुनाफ़ा नहीं होता जितना कि प्रतिभूतियां जारी करने से होता है!" "जर्मन एकानोमिस्ट" के अनुसार, औद्योगिक शेयर जारी करने से औसत वार्षिक लाभ इस प्रकार हुआ:

	प्रतिशत
१८९५	३८.६
१८९६	३६.१
१८९७	६६.७
१८९८	६७.७
१८९९	६६.९
१९००	५५.२

"१८९१ से १९०० तक के दस वर्षों में जर्मन औद्योगिक शेयर जारी करके **एक अरब मार्क से अधिक** का मुनाफ़ा 'कमाया' गया।"*

औद्योगिक तेज़ी के ज़माने में वित्तीय पूंजी का मुनाफ़ा बेशुमार होता है, परन्तु औद्योगिक मंदी के ज़माने में छोटे-छोटे तथा कमज़ोर कारोबार ठप हो जाते हैं, बड़े बैंक उन्हें मिट्टी के मोल ख़रीदकर उनमें "होल्डिंग" प्राप्त कर लेते हैं या उनके "पुनर्निर्माण" तथा "पुनःसंगठन" के लिए लाभप्रद योजनाओं में भाग लेते हैं। उन कारोबारों का "पुनर्निर्माण" करने में, जो घाटे पर चलते रहे हैं, "शेयरों की पूंजी को गिरा दिया जाता है, अर्थात् मुनाफ़ा कम पूंजी

* Stillich, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ १४३ और W. Sombart, *«Die deutsche Volkswirtschaft im 19. Jahrhundert»* (उन्नीसवीं शताब्दी में जर्मन राष्ट्रीय अर्थतंत्र – अनु०), 2. Aufl., 1909, पृष्ठ ५२६, Anlage 8.

पर बांटा जाता है और आगे चलकर भी उसका हिसाब इस प्रकार घटायी गयी पूंजी के आधार पर ही लगाया जाता है। या यदि उसकी आमदनी कुछ भी नहीं रह गयी है तो नयी पूंजी जुटायी जाती है जो भविष्य में पुरानी और कम लाभप्रद पूंजी के साथ मिलकर काफ़ी मुनाफ़ा दिला सकती है।" आगे चलकर हिल्फ़र्डिंग लिखते हैं, "बैंकों के लिए इन तमाम पुनःसंगठनों तथा पुनर्निर्माणों का दोहरा महत्व होता है: पहले तो यह कि ये सौदे लाभप्रद होते हैं; और दूसरे, उनसे संकट में फंसी हुई कम्पनियों पर अपना नियंत्रण स्थापित करने का मौक़ा मिल जाता है।"*

एक उदाहरण देखिये। डार्टमंड की यूनियन माइनिंग कम्पनी की स्थापना १८७२ में हुई थी। शेयरों से लगभग ४,००,००,००० मार्क की रक़म की पूंजी जुटायी गयी थी और पहले वर्ष १२ प्रतिशत का डिवीडेंड देने के बाद बाज़ार में शेयरों की क़ीमत बढ़कर १७० हो गयी। वित्तीय पूंजी ने सारी मलाई हड़प कर ली और उसने कोई २,८०,००,००० मार्क की तुच्छ रक़म कमायी। इस कम्पनी को खड़ा करने में मुख्य हाथ उस बहुत बड़े जर्मन बैंक *«Disconto-Gesellschaft»* का था जिसने इतनी सफलतापूर्वक ३०,००,००,००० मार्क की पूंजी खड़ी कर ली थी। बाद में यूनियन माइनिंग कम्पनी के डिवीडेंड घटते-घटते कुछ नहीं रह गये: शेयरहोल्डरों को पूंजी "गिरा देने" पर राज़ी होना पड़ा, अर्थात् सब कुछ खो देने से बचने के लिए उन्हें उसका कुछ भाग खो देने पर राज़ी होना पड़ा। ("पुनर्निर्माणों" के एक पूरे क्रम द्वारा तीस वर्षों में यूनियन कम्पनी के खातों से ७,३०,००,००० मार्क की रक़म काट दी गयी। "इस समय कम्पनी के मूल शेयरहोल्डरों के पास अपने

---

*"वित्तीय पूंजी", पृष्ठ १७२।

शेयरों के अंकित मूल्य का केवल ५ प्रतिशत भाग है,"* परन्तु बैंकों ने हर "पुनर्निर्माण" से "मुनाफ़ा कमाया"।

तेज़ी से बढ़ते हुए बड़े-बड़े शहरों के आसपास की ज़मीन का सट्टा करना वित्तीय पूंजी के लिए विशेष रूप से लाभप्रद होता है। यहां पर बकों की इजारेदारी भमि-कर की इजारेदारी और यातायात के साधनों की इजारेदारी में घुलमिल जाती है क्योंकि ज़मीन की क़ीमत में वृद्धि और उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटकर मुनाफ़े पर बेचने की संभावना आदि बातें मुख्यतः इसपर निर्भर होती हैं कि शहर के केंद्रीय भाग के साथ यातायात के साधन अच्छे हों; और यातायात के इन साधनों पर बड़ी-बड़ी कम्पनियों का क़ब्ज़ा होता है, जिनका संबंध होल्डिंग पद्धति और संचालक-मंडलों में पदों के वितरण के ज़रिये उन बैंकों के साथ होता है जिन्हें इस कारोबार में दिलचस्पी होती है। इसका नतीजा वह होता है जिसे जर्मन लेखक अश्वेगे ने, जिनके लेख *«Die Bank»* में प्रकाशित होते रहते हैं और जिन्होंने स्थावर भूसम्पत्ति के कारोबार तथा गिरवी आदि का विशेष रूप से अध्ययन किया है, "दलदल" कहा है। उपनगरों में मकान बनाने की ज़मीनों के सिलसिले में ज़ोरों का सट्टा चलता है; मकान बनाने के कारोबार बैठ जाते हैं (जैसे बर्लिन की "बोसवाउ तथा क्नौएर" नामक कम्पनी का कारोबार बैठ गया था, जिसने "मज़बूत और ठोस" "जर्मन बैंक" (*«Deutsche Bank»*) की सहायता से १०,००,००,००० मार्क की मोटी रक़म बटोरी थी – जाहिर है, "जर्मन बैंक" होल्डिंग पद्धति के अनुसार, अर्थात् गुप्त रूप से, परदे के पीछे, काम कर रहा था और "केवल" १,२०,००,००० मार्क का घाटा उठाकर वह इस कारोबार में से निकल आया), और

* Stillich, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ १३८ और Liefmann, पृष्ठ ५१।

फिर छोटे-छोटे मालिकों तथा मज़दूरों की तबाही आती है जिन्हें इन फ़र्ज़ी इमारती कम्पनियों से कुछ भी नहीं मिलता, इमारती ज़मीन के टेंडर और इमारतें बनाने के लाएसेंस जारी करने पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए बर्लिन की "ईमानदार" पुलिस तथा प्रशासन-व्यवस्था के साथ जालसाज़ी के सौदे होते हैं, आदि, आदि।*

"अमरीकी नैतिकता", जिसकी कि यूरोप के प्रोफ़ेसर तथा नेकनीयत पूंजीपति इतनी मक्कारी के साथ निंदा करते हैं, वित्तीय पूंजी के युग में हर देश के हर बड़े शहर की नैतिकता बन गयी है।

१९१४ के आरंभ में बर्लिन में एक "यातायात ट्रस्ट" बनाने की, अर्थात् बर्लिन की तीन यातायात कम्पनियों के बीच – नगर की बिजली की रेल, ट्राम कम्पनी और बस कम्पनी के बीच – "हितों का ऐक्य" स्थापित करने की चर्चा थी। *«Die Bank»* ने लिखा, "जब से इस बात का पता चला कि बस कम्पनी के अधिकांश शेयर बाक़ी दोनों कम्पनियों ने ख़रीद लिये हैं तब से हमें मालूम है कि इस प्रकार की योजना की बात सोची जा रही है। ... जो लोग इस उद्देश्य को लेकर चल रहे हैं उनकी इस बात पर हम पूरी तरह विश्वास करने को तैयार हैं कि यातायात सेवाओं को एक में मिलाकर वे बचत करेंगे जिसका कुछ भाग आगे चलकर पब्लिक को फ़ायदा पहुंचायेगा। परन्तु इस बात में इस हक़ीक़त के कारण कुछ पेचीदगी पैदा हो गयी है कि जो यातायात ट्रस्ट बनाया जा रहा है उसके पीछे बैंकों का हाथ है, और यदि वे चाहें तो वे यातायात के इन साधनों को, जिनपर उन्होंने अपनी इजारेदारी क़ायम कर ली है, ज़मीन के टुकड़ों के अपने व्यापार के

---

* *«Die Bank»* में, १९१३, पृष्ठ ९५२। L. Eschwege, *«Der Sumpf»* ("दलदल" – अनु०), उपरोक्त, १९१२, १, पृष्ठ २२३ तथा उसके आगे के पृष्ठ।

हितों के अधीन कर सकते हैं। यदि हम केवल इस बात को याद करें कि जिस बड़े बैंक ने एलीवेटेड रेलवे कम्पनी के निर्माण को प्रोत्साहित किया था उसके हित कम्पनी के निर्माण के समय पहले से ही उसमें मौजूद थे, तो हमें विश्वास हो जायेगा कि हमारा यह अनुमान कितना सही है। कहने का मतलब यह कि यातायात के इस कारोबार के हित ज़मीन के टुकड़ों के व्यापार के हितों के साथ गुंथे हुए थे। बात यह है कि इस रेलवे की पूर्वी लाइन जिस ज़मीन से होकर गुज़रनेवाली थी उसे इस बैंक ने, जब यह बात तै हो गयी कि लाइन बिछायी जायेगी, बेच दिया और इस तरह अपने लिए और इस सौदे में शरीक कई दूसरे हिस्सेदारों के लिए बेशुमार मुनाफ़ा कमाया..."*

राजनीतिक व्यवस्था का रूप और "ब्योरे" की सभी दूसरी बातें कुछ भी हों पर जब एक बार कोई इजारेदारी बन जाती है और अरबों की रक़म पर उसका क़ब्ज़ा हो जाता है तो वह अनिवार्य रूप से सार्वजनिक जीवन के हर क्षेत्र में प्रविष्ट होती है। जर्मनी के आर्थिक साहित्य में हम अक्सर प्रशिया की नौकरशाही की ईमानदारी की भूरि-भूरि प्रशंसा और फ़्रांसीसियों के शर्मनाक पनामा[9] कांड तथा अमरीका के राजनीतिक भ्रष्टाचार की ओर संकेत पाते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि जर्मनी के बैंकों के कारोबार से संबंधित पूंजीवादी साहित्य को भी निरंतर शुद्धतः बैंक के कारोबार के क्षेत्र से बाहर की बातों का, जैसे उदाहरणार्थ बैंकों में नौकरी कर लेनेवाले सरकारी अफ़सरों की संख्या निरंतर बढ़ते जाने के प्रसंग में "बैंकों के आकर्षण" का, उल्लेख इन शब्दों में करना पड़ता है: "आप उस सरकारी अफ़सर की ईमानदारी के बारे में क्या कहेंगे जिसके मन में हमेशा यही कामना रहती है

---

* *«Die Bank»* में *«Verkehrstrust»*, (यातायात ट्रस्ट) १९१४, १, पृष्ठ ८९।

कि उसे बेहरेनस्ट्रासे में" (बर्लिन की वह सड़क जिसपर "जर्मन बैंक" का दफ़्तर है) "एक अच्छी-सी नौकरी मिल जाये?"* १६०६ में *«Die Bank»* के प्रकाशक अल्फ़ ेड लैंसबर्ग ने एक लेख लिखा था जिसका शीर्षक था "बिज़ेन्टाइनवाद का आर्थिक महत्व", जिसमें उन्होंने लगे हाथों विल्हेल्म द्वितीय के फ़िलिस्तीन के दौरे का और "इस यात्रा के तात्कालिक परिणाम" का, "अर्थात् बगदाद रेलवे के निर्माण" का उल्लेख किया था, "'जर्मन उद्यमशीलता की उस महान' घातक 'उपज'" का "जो हमारी तमाम भयंकर राजनीतिक ग़लतियों की अपेक्षा 'घेरेबंदी के लिए ज़्यादा ज़िम्मेवार है'।"** (घेरेबंदी से मतलब जर्मनी को सबसे अलग कर देने और उसके चारों ओर जर्मन-विरोधी साम्राज्यवादी मित्र-देशों का घेरा डाल देने की एडवर्ड सप्तम की नीति से है।) १६११ में इसी पत्रिका में लिखनेवाले अश्वेगे नामक लेखक ने, जिनका उल्लेख हम ऊपर कर आये हैं, एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था "धनिकतंत्र तथा नौकरशाही", जिसमें उन्होंने फ़ोल्कर नामक एक जर्मन अफ़सर के क़िस्से का भंडाफोड़ किया था; वह कार्टेल समिति का एक उत्साही सदस्य था, जिसके बारे में कुछ समय बाद पता यह चला कि उसे सबसे बड़े कार्टेल, यानी स्टील सिंडीकेट में बहुत ऊंचे वेतन पर एक नौकरी मिल गयी थी। ऐसे ही दूसरे उदाहरणों के कारण, जो किसी भी प्रकार आकस्मिक नहीं थे, इस पूंजीवादी लेखक को यह स्वीकार करने पर मजबूर होना पड़ा कि "जर्मन संविधान में जिस आर्थिक स्वतंत्रता की गारंटी दी गयी है वह आर्थिक जीवन के कई क्षेत्रों में एक निरर्थक शब्द मात्र बनकर रह गयी है," और धनिकतंत्र के

---

* *«Die Bank»* में, *«Der Zug zur Bank»* (बैंक का आकर्षण – अनु०) १६०६, १, पृष्ठ ७६।

** उपरोक्त, पृष्ठ ३०१।

-वर्तमान शासन के अधीन "व्यापकतम राजनीतिक स्वतंत्रता भी हमें अस्वतंत्र लोगों के राष्ट्र में परिवर्तित हो जाने से नहीं बचा सकती।"*

जहां तक रूस का सवाल है हम अपने आपको केवल एक उदाहरण तक ही सीमित रखेंगे। कुछ वर्ष पहले सभी अख़बारों ने यह ख़बर छापी कि सरकारी ख़ज़ाने के ऋण विभाग के संचालक दवीदोव ने अपने पद से इस्तीफ़ा देकर एक बड़े बैंक में नौकरी कर ली है, जहां, क़रार के अनुसार, उन्हें कई वर्ष के दौरान में वेतन के रूप में कुल दस लाख रूबल से अधिक रक़म मिलेगी। ऋण विभाग एक ऐसी संस्था है जिसका काम "देश की ऋण देनेवाली सभी संस्थाओं के काम का समन्वयन करना" है और जो सेंट पीटर्सबर्ग तथा मास्को के बैंकों को लगभग ८० करोड़ से १ अरब रूबल तक की सहायता देती है।**— — —

पूरे पूंजीवाद की आम तौर पर यह विशेषता है कि उसमें पूंजी के स्वामित्व को उत्पादन में पूंजी लगाने से अलग कर दिया जाता है, द्रव्य पूंजी को औद्योगिक या उत्पादनशील पूंजी से अलग कर दिया जाता है, और द्रव्य पूंजी से प्राप्त होनेवाली आय पर ही जीवित रहनेवाले सूदख़ोरों को कारोबार करनेवालों तथा उन तमाम लोगों से अलग कर दिया जाता है जिनका पूंजी की व्यवस्था में प्रत्यक्ष रूप से हाथ होता है। साम्राज्यवाद, अर्थात् वित्तीय पूंजी का प्रभुत्व, पूंजीवाद की वह चरम अवस्था है जहां पहुंचकर यह अलगाव बहुत व्यापक रूप धारण कर लेता है। पूंजी के अन्य सभी रूपों पर वित्तीय पूंजी की प्रभुता का अर्थ सूदख़ोरों और वित्तीय अल्पतंत्र की प्रधानता होता है; इसका मतलब यह होता है कि वित्तीय दृष्टि से "शक्तिशाली" गिने-चुने राज्यों को अलग छांट लिया जाये। यह प्रक्रिया किस पैमाने पर चल रही है इसका

---

* उपरोक्त, १९११, २, पृष्ठ ८२५; १९१३, २, पृष्ठ ९६२।

** E. Agahd, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ २०२।

अंदाज़ा उत्सारण से, अर्थात् जारी की जानेवाली हर प्रकार की प्रतिभूतियों से, संबंधित आंकड़ों से लगाया जा सकता है।

इंटरनेशनल स्टेटिस्टिकल इंस्टीट्यूट की बुलेटिन में ए० नेमार्क ने* सारी दुनिया में जारी की गयी प्रतिभूतियों के बारे में अत्यंत विशद, पूर्ण तथा तुलनात्मक आंकड़े प्रकाशित किये हैं, जिन्हें आंशिक रूप में आर्थिक साहित्य में बार-बार उद्धृत किया गया है। उन्होंने चार दशकों के आंकड़ों का जो योग दिया है, वह इस प्रकार है:

जारी की गयी कुल प्रतिभूतियां, अरब फ़्रांकों में

(दशक)

१८७१-१८८०	७६.१
१८८१-१८९०	६४.५
१८९१-१९००	१००.४
१९०१-१९१०	१९७.८

उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में सारी दुनिया में जारी की गयी प्रतिभूतियों की कुल रक़म, विशेष रूप से फ़्रांस तथा प्रशिया के युद्ध के संबंध में जुटाये गये ऋणों के कारण, और इस युद्ध के बाद जर्मनी में नयी कम्पनियां खड़ी करने की लहर चल जाने के कारण, बहुत ऊंची थी। कुल मिलाकर देखा जाये तो उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम तीन दशकों में यह वृद्धि अपेक्षतः इतनी तेज़ नहीं थी और केवल बीसवीं शताब्दी के प्रथम दस वर्षों में लगभग १०० प्रतिशत की विशाल वृद्धि देखने में आती है। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी का आरंभ केवल इजारेदारियों (कार्टेल, सिंडीकेट, ट्रस्ट) के विकास की दृष्टि से ही

* *Bulletin de l'institut international de statistique*, t. XIX, livr. II. La Haye. 1912. छोटे राज्यों के संबंध में दूसरे स्तंभ में जो आंकड़े दिये गये हैं उनका हिसाब १९०२ के आंकड़ों को २० प्रतिशत बढ़ाकर लगाया गया है।

नहीं, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं, बल्कि वित्तीय पूंजी की वृद्धि की दृष्टि से भी एक मोड़ का द्योतक है।

नेमार्क ने अनुमान लगाया है कि १९१० में सारी दुनिया में जो जारी की गयी प्रतिभूतियां प्रचलित थीं उनका मूल्य कुल मिलाकर लगभग ८,१५,००,००,००,००० फ़्रांक था। इस रक़म में से ऐसी राशियों को घटाकर जिनके बारे में यह शंका है कि उनका हिसाब शायद दो बार लगा लिया गया हो, वह इस रक़म को घटाकर ५७५-६०० अरब निर्धारित करते हैं जिसका विभाजन विभिन्न देशों के बीच इस प्रकार था: (हम ६,००,००,००,००,००० की रक़म को लेंगे।)

१९१० में प्रचलित वित्तीय प्रतिभूतियां (अरब फ़्रांकों में)

ग्रेट ब्रिटेन	१४२	४७९
सं० रा० अमरीका	१३२	
फ़्रांस	११०	
जर्मनी	९५	
रूस	३१	
आस्ट्रिया-हंगरी	२४	
इटली	१४	
जापान	१२	
हालैंड	१२.५	
बेलजियम	७.५	
स्पेन	७.५	
स्विट्ज़रलैंड	६.२५	
डेनमार्क	३.७५	
स्वीडन, नार्वे, रूमानिया, आदि	२.५	
कुल	६००	

इन आंकड़ों से फ़ौरन उन चार सबसे धनी पूंजीवादी देशों का चित्र हमारे सामने उभरकर आ जाता है, जिनमें से हर एक के पास लगभग १०० से १५० अरब फ़्रांक तक की रक़म की प्रतिभूतियां हैं। इन चार देशों में से दो, इंगलैंड तथा फ़्रांस, सबसे पुराने पूंजीवादी देश हैं, और जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे, उनके पास सबसे अधिक उपनिवेश हैं; बाक़ी दो, संयुक्त राज्य अमरीका तथा जर्मनी, विकास की तीव्रता की दृष्टि से तथा इस दृष्टि से कि उद्योगों में पूंजीवादी इजारेदारियों का विस्तार किस हद तक हुआ है, प्रमुख पूंजीवादी देश हैं। इन चारों देशों के पास मिलाकर ४,७९,००,००,००,००० फ़्रांक हैं, अर्थात् संसार की कुल वित्तीय पूंजी का ८० प्रतिशत भाग। लगभग बाक़ी तमाम दुनिया किसी न किसी रूप में इन अंतर्राष्ट्रीय महाजन देशों की, विश्व वित्तीय पूंजी के इन चार "स्तंभों" की, कमोबेश क़र्ज़दार और उनकी आसामी है।

परावलम्बन तथा वित्तीय पूंजी के संबंधों के इस अंतर्राष्ट्रीय जाल का निर्माण करने में पूंजी के निर्यात की जो भूमिका है उसकी जांच करना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

४. पूंजी का निर्यात

पुराने पूंजीवाद के ज़माने में, जब खुली प्रतियोगिता का पूरा राज था, **माल** का निर्यात उसकी विशेषता थी। पूंजीवाद की नवीनतम अवस्था में, जबकि इजारेदारियों का राज है, **पूंजी** का निर्यात उसकी विशेषता है।

अपने विकास की चरम अवस्था में बिकाऊ माल का उत्पादन पूंजीवाद है, जहां पहुंचकर श्रम-शक्ति स्वयं एक बिकाऊ माल बन जाती है। आंतरिक विनिमय की, और विशेषतः अंतर्राष्ट्रीय विनिमय की,

वृद्धि पूंजीवाद की अपनी अलग लाक्षणिक विशेषता है। अलग-अलग कारोबारों का, उद्योगों की अलग-अलग शाखाओं का तथा अलग-अलग देशों का असमान तथा रुक-रुककर झटकों के साथ विकास पूंजीवादी व्यवस्था में अनिवार्य है। इंगलैंड किसी भी दूसरे देश की अपेक्षा सबसे पहले पूंजीवादी देश बना और उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक खुले व्यापार का मार्ग अपनाकर वह "सारी दुनिया का कारखाना" होने का, सभी देशों को कारखानों का तैयार माल सप्लाई करनेवाला होने का दावा करने लगा, जिन्हें इसके बदले में उसे कच्चे माल से परिपूर्ण रखना पड़ता था। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी की अंतिम चौथाई में इस इजारेदारी की जड़ें खोखली हो चुकी थीं, क्योंकि दूसरे देश अपने आपको "संरक्षणात्मक" महसूलों द्वारा सुरक्षित करके स्वतंत्र पूंजीवादी राज्य बन गये थे। बीसवीं शताब्दी में प्रवेश करते ही हम एक नये ढंग की इजारेदारी का निर्माण होते देखते हैं: पहले, सभी विकसित पूंजीवादी देशों में इजारेदार पूंजीवादी संघ हैं; दूसरे, गिने-चुने अत्यंत धनी देशों की इजारेदारी की स्थिति, जिनमें पूंजी का संचय अत्यंत विशाल रूप धारण कर चुका है। उन्नत देशों में "पूंजी का" बेहद "अति-बाहुल्य" पैदा हो गया है।

यह तो मानी हुई बात है कि यदि पूंजीवाद कृषि का विकास कर सकता, जो आज हर जगह उद्योगों से बेहद पीछे है, यदि वह जन-साधारण के रहन-सहन के स्तर को ऊंचा उठा सकता, जिन्हें आज भी आश्चर्यजनक प्राविधिक उन्नति के बावजूद हर जगह भर-पेट भोजन नहीं मिलता और जो दरिद्रता का शिकार हैं, तो पूंजी के अति-बाहुल्य का कोई सवाल ही पैदा न होता। पूंजीवाद के निम्न-पूंजीवादी आलोचक बहुधा यह "दलील" पेश करते हैं। परन्तु यदि पूंजीवाद यह सब कुछ करता तो वह पूंजीवाद ही न होता, क्योंकि असमान विकास और जन-साधारण को भर-पेट भोजन न मिलना ये दोनों ही बातें इस

उत्पादन-प्रणाली की आधारभूत तथा अनिवार्य शर्तें तथा मान्यताएं हैं। जब तक पूंजीवाद पूंजीवाद रहेगा तब तक फ़ालतू पूंजी उस देश विशेष के जन-साधारण के रहन-सहन के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए नहीं इस्तेमाल की जायेगी क्योंकि इसका मतलब होगा पूंजीपतियों के मुनाफ़े में कमी, बल्कि उसका इस्तेमाल पिछड़े हुए देशों में पूंजी का निर्यात करके मुनाफ़े बढ़ाने के लिए किया जायेगा। इन पिछड़े हुए देशों में मुनाफ़े आम तौर पर ऊंचे होते हैं क्योंकि वहां पूंजी का अभाव रहता है, ज़मीन की क़ीमत अपेक्षतः कम होती है, मज़दूरी बहुत कम होती है, कच्चा माल सस्ता होता है। पूंजी के निर्यात की संभावना इस बात से उत्पन्न होती है कि अनेक पिछड़े हुए देश विश्वव्यापी पूंजीवादी संसर्ग के क्षेत्र में खिंचकर आ चुके हैं; वहां मुख्य रेलवे लाइनें या तो बन चुकी हैं या बनायी जा रही हैं, औद्योगिक विकास के लिए प्राथमिक परिस्थितियां उत्पन्न कर दी गयी हैं, आदि। पूंजी का निर्यात करने की आवश्यकता इस बात से उत्पन्न होती है कि कुछ गिने-चुने देशों में पूंजीवाद "आवश्यकता से अधिक पक चुका है" और (कृषि की पिछड़ी हुई अवस्था तथा जन-साधारण की दरिद्रता के कारण) पूंजी को "लाभप्रद" ढंग से लगाने के लिए क्षेत्र नहीं मिलता।

नीचे हम तीन देशों द्वारा विदेशों में लगायी गयी पूंजी की रक़म के संबंध में मोटे-मोटे आंकड़े दे रहे हैं:*

---

*हाबसन, "साम्राज्यवाद", लंदन १६०२, पृष्ठ ५८; रीसेर, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ ३६५ तथा ४०४, पी० आर्नड्ट, *«Weltwirtschaftliches Archiv»* में, खंड ७, १६१६, पृष्ठ ३५; नेमार्क, वुलेटिन में; हिल्फ़र्डिंग, "वित्तीय पूंजी", पृष्ठ ४६२; ४ मई, १६१५ को हाउस आफ़ कामंस में लायड जार्ज का भाषण, जिसकी रिपोर्ट ५ मई, १६१५ को "डेली टेलीग्राफ़" में छपी थी; बी० हार्म्स, *«Probleme der Weltwirtschaft»*, जेना १६१२, पृष्ठ २३५ तथा उसके बाद के पृष्ठ;

विदेशों में लगी हुई पूंजी
(अरब फ़्रांकों में)

वर्ष	ग्रेट ब्रिटेन	फ़्रांस	जर्मनी
१८६२	३.६	–	–
१८७२	१५.०	१० (१८६९)	–
१८८२	२२.०	१५ (१८८०)	?
१८९३	४२.०	२० (१८९०)	?
१९०२	६२.०	२७-३७	१२.५
१९१४	७५-१००.०	६०	४४.०

इस तालिका से पता चलता है कि बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ही जाकर पूंजी के निर्यात ने व्यापक रूप धारण किया। युद्ध से पहले विदेशों में तीन मुख्य देशों द्वारा लगायी गयी पूंजी १,७५,००,००,००,००० और २,००,००,००,००,००० फ़्रांक के बीच थी। यदि ५ प्रतिशत की मामूली दर से भी हिसाब लगाया जाये तो इस राशि से होनेवाली आय प्रति वर्ष ८ से १० अरब फ़्रांक तक रही होगी। संसार के अधिकांश देशों तथा राष्ट्रों के साम्राज्यवादी उत्पीड़न तथा शोषण के लिए, इस बात के लिए कि गिने-चुने धनवान राज्य पूंजीवादी ढंग से दूसरों का ख़ून चूसकर जीवित रहें, कितना ठोस आधार है!

डा० सीगमंड शिल्दर, «*Entwicklungstendenzen der Weltwirtschaft*» (विश्व अर्थतंत्र के विकास की प्रवृत्तियां – अनु०), बर्लिन १९१२, खंड १, पृष्ठ १५०; जार्ज पेश, "जर्नल आफ़ दे रायल स्टेटिस्टिकल सोसायटी" में "ग्रेट ब्रिटेन द्वारा लगायी गयी पूंजी, आदि", खंड ७४, १९१०-११, पृष्ठ १६७ तथा उसके बाद के पृष्ठ; जार्ज दियूरिच, «*L'Expansion des banques allemandes á l'étranger, ses rapports avec le développement économique de l'Allemagne*» (जर्मनी के आर्थिक विकास के संबंध में विदेशों में जर्मन बैंकों का विस्तार – अनु०), पेरिस १९०९, पृष्ठ ८४।

विदेशों में लगी हुई यह पूंजी किस प्रकार बंटी हुई है? वह कहां लगायी गयी है? इस प्रश्न का उत्तर केवल मोटे-मोटे तौर पर ही दिया जा सकता है, पर जो आधुनिक साम्राज्यवाद के कुछ ग्राम संबंधों तथा रिश्तों पर प्रकाश डालने के लिए काफ़ी है।

विदेशी पूंजी का मोटे-मोटे तौर पर वितरण

(१६१० के लगभग)

	ग्रेट ब्रिटेन	फ़ांस	जर्मनी	कुल योग
	(अरब	मार्कों	में)	
यूरोप	४	२३	१८	४५
अमरीका	३७	४	१०	५१
एशिया, अफ़्रीका, आस्ट्रेलिया . .	२६	८	७	४४
कुल योग	७०	३५	३५	१४०

ब्रिटिश पूंजी लगाने के मुख्य क्षेत्र ब्रिटिश उपनिवेश आदि हैं जो, एशिया की बात तो जाने दीजिये, अमरीका में भी बहुत बड़े-बड़े हैं (जैसे कनाडा)। इस उदाहरण में, पूंजी के विपुल निर्यात का बहुत गहरा संबंध विस्तृत उपनिवेशों के साथ है, साम्राज्यवाद के लिए जिनके महत्व का उल्लेख हम आगे चलकर करेंगे। फ़ांस के मामले में परिस्थिति इससे भिन्न है। फ़ांस से जितनी पूंजी का निर्यात किया गया है वह मुख्यतः यूरोप में, सबसे बढ़कर रूस में (कम से कम दस अरब फ़्रांक), लगी हुई है। यह पूंजी मुख्यतः **ऋण के रूप में**, सरकारी ऋणों के रूप में, लगायी गयी है, वह औद्योगिक कारोबार में लगी हुई पूंजी नहीं है। फ़ांसीसी साम्राज्यवाद को, जो ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्यवाद से भिन्न है, हम सूदखोर साम्राज्यवाद कह सकते हैं। जर्मनी में एक

तीसरे प्रकार का साम्राज्यवाद है, उसके उपनिवेश बहुत थोड़े हैं और विदेशों में लगी हुई जर्मन पूंजी यूरोप तथा अमरीका के बीच बहुत संतुलित ढंग से बंटी हुई है।

पूंजी का निर्यात उन देशों में, जहां वह भेजी जाती है, पूंजीवाद के विकास पर प्रभाव डालता है तथा उसकी रफ़्तार को बहुत तेज़ कर देता है। इसलिए, पूंजी के निर्यात से पूंजी का निर्यात करनेवाले देशों में विकास को कुछ हद तक रोक देने की प्रवृत्ति तो हो सकती है, पर वह इस काम को सारे संसार में पूंजीवाद के और अधिक विकास को बढ़ाकर तथा गहरा बनाकर ही पूरा कर सकता है।

जो देश पूंजी का निर्यात करते हैं वे लगभग हमेशा ही कुछ ऐसी "सुविधाएं" प्राप्त कर लेने में सफल होते हैं, जिनके स्वरूप से वित्तीय पूंजी तथा इजारेदारी के युग की विशिष्टता पर प्रकाश पड़ता है। उदाहरण के लिए, बर्लिन की *«Die Bank»* नामक समीक्षा-पत्रिका के अक्तूबर १९१३ के अंक में निम्नलिखित बात छपी थी:

"इधर कुछ दिनों से पूंजी के अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में एक ऐसा हास्यप्रधान नाटक हो रहा है जो ऐरिस्टोफ़ेनीज़ जैसे किसी नाटककार की लेखनी को शोभा देता। स्पेन से लेकर बालकन राज्यों तक, रूस से लेकर अर्जेन्टाइना, ब्राज़ील तथा चीन तक, बहुत-से देश बड़ी पूंजी के बाज़ार में खुलेआम या चोरी-छुपे आते हैं और क़र्ज़ मांगते हैं, कभी-कभी तो वे क़र्ज़ के लिए धरना देकर बैठ जाते हैं। इस समय पैसे के बाज़ार की हालत बहुत अच्छी नहीं है और राजनीतिक परिस्थिति भी बहुत आशाजनक नहीं है। परन्तु पैसे का एक भी बाज़ार ऐसा नहीं जो विदेशों को ऋण देने से इंकार कर सके क्योंकि वह डरता है कि कहीं उसका पड़ोसी उससे आगे न निकल जाये, ऋण देने पर राज़ी न हो जाये और इस प्रकार ऋण लेनेवाले से इसके बदले में कोई काम न करवा ले। इन अन्तर्राष्ट्रीय सौदेबाज़ियों में ऋण देनेवाला लगभग

हमेशा ही कोई न कोई विशेष सुविधा प्राप्त कर लेता है: किसी वाणिज्यिक समझौते में अपनी सुविधा की कोई शर्त, जहाज़ों के लिए कोयला लेने का कोई स्थान, कोई बंदरगाह बनाने का ठेका, कोई बड़ी-सी रिआयत, या तोपों का आर्डर।"*

वित्तीय पूंजी ने इजारेदारियों के युग को जन्म दिया है और इजारेदारियां हर जगह इजारेदारी के सिद्धांत लागू करती हैं: खुले बाज़ार में प्रतियोगिता के बजाय मुनाफ़े के सौदों के लिए "संबंधों" का फ़ायदा उठाया जाने लगता है। सबसे ज़्यादा आम बात तो यह होती है कि एक शर्त यह लगा दी जाती है कि जो ऋण दिया गया है उसका एक भाग ऋण देनेवाले देश से चीज़ें ख़रीदने पर, विशेष रूप से युद्ध-सामग्री, या जहाज़ आदि ख़रीदने पर ख़र्च किया जायेगा। पिछले दो दशकों में (१८९०-१९१०) फ़्रांस ने यह तरीक़ा बहुत बार अपनाया है। इस प्रकार विदेशों को पूंजी का निर्यात करना बिकाऊ माल के निर्यात को प्रोत्साहन देने का साधन बन जाता है। इस प्रसंग में, विशेष रूप से बड़ी-बड़ी कम्पनियों के बीच होनेवाले सौदे ऐसा रूप धारण कर लेते हैं जिसके बारे में शिल्दर** ने "बहुत नरम शब्दों में" कहा है कि वह "लगभग भ्रष्टाचार ही होता है"। जर्मनी में क्रुप्प, फ़्रांस में श्नाइदर, इंगलैंड में आर्मस्ट्रांग ऐसी कम्पनियां हैं जिनके संबंध शक्तिशाली बैंकों तथा सरकारों के साथ बहुत गहरे हैं और ऋण का बंदोबस्त करते समय इनकी आसानी से "उपेक्षा" नहीं की जा सकती।

रूस को ऋण देते समय फ़्रांस ने उसे "दबाकर" १६ सितम्बर, १९०५ का वाणिज्यिक समझौता करने पर मजबूर किया जिसमें उसने कुछ ऐसी रिआयतों की शर्त रखी जो १९१७ तक लागू रहनेवाली थीं। १९ अगस्त, १९११ को जब फ़्रांस और जापान के बीच वाणिज्यिक समझौता

---

* «*Die Bank*», १९१३, २, पृष्ठ १०२४।

** Schilder, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ ३४६, ३५० तथा ३७१।

हुआ उस समय भी उसने यही किया। आस्ट्रिया तथा सरबिया के बीच, सात महीने की अवधि को छोड़कर, १६०६ से १६११ तक जो महसूलों का युद्ध चलता रहा उसका कारण आंशिक रूप से सरबिया को युद्ध-सामग्री देने के सिलसिले में आस्ट्रिया तथा फ़्रांस की पारस्परिक प्रतियोगिता थी। जनवरी १६१२ में पाल देशानेल ने चैम्बर आफ़ डिपुटीज़ में कहा कि १६०८ से १६११ तक फ़्रांसीसी कम्पनियों ने सरबिया को ४,५०,००,००० फ़्रांक की युद्ध-सामग्री दी थी।

साओ-पालो (ब्राज़ील) में आस्ट्रिया-हंगरी के कौंसल की एक रिपोर्ट में कहा गया है: "ब्राज़ील की रेलों का निर्माण मुख्यतः फ़्रांस, बेलजियम, ब्रिटेन तथा जर्मनी की पूंजी से हो रहा है। इन रेलों के निर्माण के संबंध में जो वित्तीय लेन-देन हुई है उसमें ऋण देनेवाले देशों ने यह शर्त लगायी है कि रेलों के लिए आवश्यक सामान का आर्डर उन्हें ही दिया जायेगा।"

हम यह कह सकते हैं कि इस प्रकार वित्तीय पूंजी शब्दशः अपना जाल संसार के सभी देशों में फैलाती है। इसमें उपनिवेशों में स्थापित किये जानेवाले बैंकों तथा उनकी शाखाओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। जर्मन साम्राज्यवाद दूसरे देशों में अपने उपनिवेश बनानेवाले उन "पुराने" देशों को बड़ी ईर्ष्या की दृष्टि से देखता है जो अपने लिए इस बात का पूरा प्रबंध करने में विशेष रूप से "सफल" हुए हैं। १६०४ में ग्रेट ब्रिटेन के ५० औपनिवेशिक बैंक थे जिनकी २,२७६ शाखाएं थीं (१६१० में इन बैंकों की संख्या ७२ और उनकी शाखाओं की संख्या ५,४४६ थी); फ़्रांस के २० बैंक थे जिनकी १३६ शाखाएं थीं; हालैंड के १६ बैंक थे जिनकी ६८ शाखाएं थीं, और जर्मनी के "केवल" १३ बैंक थे जिनकी ७० शाखाएं थीं।* दूसरी तरफ़ अमरीकी

---

* Riesser, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, चौथा संस्करण, पृष्ठ ३७५, Diouritch, पृष्ठ २८३।

पूंजीपति इंगलड तथा जर्मनी से जलते हैं: १९१५ में उन्होंने यह शिकायत की थी कि "दक्षिणी अमरीका में पांच जर्मन बैंकों की चालीस शाखाएं और पांच अंग्रेज़ बैंकों की सत्तर शाखाएं हैं... इंगलैंड और जर्मनी ने पिछले पच्चीस वर्षों में अर्जेन्टाइना, ब्राज़ील तथा उरुग्वे में लगभग चार अरब डालर की पूंजी लगायी है और फलस्वरूप वे आपस में इन तीन देशों के कुल व्यापार के ४६ प्रतिशत भाग पर क़ब्ज़ा जमाये हुए हैं।"*

पूंजी का निर्यात करनेवाले देशों ने तो अपने बीच दुनिया का बंटवारा जिस अर्थ में कर रखा है वह इस शब्द का आलंकारिक अर्थ है। परन्तु वित्तीय पूंजी के फलस्वरूप तो दुनिया का बंटवारा **सचमुच** हो गया है।

५. पूंजीपति संघों के बीच दुनिया का बंटवारा

इजारेदार पूंजीपति संघ, कार्टेल, सिंडीकेट तथा ट्रस्ट सबसे पहले तो अपने देश के बाज़ार को आपस में बांट लेते हैं, उस देश के उद्योगों को कमोबेश पूरी तरह अपने क़ब्ज़े में कर लेते हैं। परन्तु पूंजीवाद के अंतर्गत अपने देश का बाज़ार अनिवार्य रूप से विदेशी बाज़ार के साथ सम्बद्ध होता है। पूंजीवाद ने मुद्दत से ही विश्वव्यापी बाज़ार तैयार कर रक्खा है। जैसे-जैसे पूंजी का निर्यात बढ़ता गया और बड़े-बड़े इजारेदार संघों के विदेशी तथा औपनिवेशिक संबंध तथा "प्रभाव-क्षेत्र"

---

* *The Annals of the American Academy of Political and Social Science*, Vol. LIX, May 1915, p. 301. इसी खंड में पृष्ठ ३३१ पर हम पढ़ते हैं कि प्रख्यात सांख्यिकीविद पेश ने *«Statist»* नामक वित्तीय पत्रिका के पिछले अंक में यह अनुमान लगाया था कि इंगलैंड, जर्मनी, फ़्रांस, बेलजियम तथा हालैंड ने ४०,००,००,००,००० डालर अर्थात् २,००,००,००,००,००० फ़्रांक की पूंजी निर्यात की।

हर तरह से बढ़ते गये, वैसे-वैसे "स्वाभाविक रूप से" परिस्थितियां इन संघों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय समझौते की दिशा में, और अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेलों के निर्माण की दिशा में खिंचती गयीं।

यह पूंजी तथा उत्पादन के विश्वव्यापी संकेंद्रण की नयी मंज़िल है जो इससे पहले की तमाम मंज़िलों से कहीं ज़्यादा ऊंची है। आइये, हम देखें कि यह महा-इजारेदारी किस प्रकार विकसित होती है।

बिजली-उद्योग नवीनतम प्राविधिक सफलताओं का सबसे लाक्षणिक उदाहरण है, उन्नीसवीं शताब्दी के **अंत** तथा बीसवीं शताब्दी के आरंभ में पूंजीवाद की सारी विशेषताएं इसमें पायी जाती हैं। यह उद्योग नये पूंजीवादी देशों में से दो सबसे उन्नत देशों में, संयुक्त राज्य अमरीका तथा जर्मनी में, सबसे अधिक विकसित हुआ है। जर्मनी में १९०० के संकट ने इसके संकेंद्रण को विशेष रूप से प्रबल प्रोत्साहन दिया। संकट के दौरान में बैंकों ने, जो उस समय तक उद्योगों के साथ काफ़ी अच्छी तरह घुलमिल चुके थे, अपेक्षतः छोटी कम्पनियों के तबाह होने तथा बड़ी कम्पनियों में उनके विलीन हो जाने की प्रक्रिया को बहुत तेज़ कर दिया तथा गहरा बना दिया। जीडेल्स ने लिखा है, "बैंक उन कम्पनियों को, जिन्हें पूंजी की सबसे अधिक आवश्यकता है, सहारा देने से इंकार करके पहले तो बहुत ज़बर्दस्त तेज़ी पैदा करते हैं और फिर वे कम्पनियां, जो उनके साथ काफ़ी घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध नहीं होतीं, बुरी तरह ठप हो जाती हैं।"*

फलस्वरूप, १९०० के बाद जर्मनी में संकेंद्रण बड़ी तीव्र गति से बढ़ा। १९०० तक बिजली-उद्योग में आठ या सात "समूह" थे। हर एक में कई-कई कम्पनियां थीं (कुल मिलाकर २८ कम्पनियां थीं) और हर एक के पीछे २ से लेकर ११ बैंकों तक का हाथ था। १९०८ और १९१२ के बीच ये सारे समूह आपस में मिलकर दो, या एक रह गये। नीचे दिये हुए खाके से इस प्रक्रिया का पता चलता है:

---

*जीडेल्स, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ २३२।

बिजली-उद्योग में विभिन्न समूह

१९०० से पहले :

फ़ेल्टेन एंड गिलौम	लाहमेयेर	यूनियन	ए० ई० जी०	सीमेन्स एंड हाल्स्के	शुकर्ट एंड कं०	बर्गमैन	कुम्मर
फ़ेल्टेन एंड लाहमेयेर		ए० ई० जी० (जेनरल एल० कं०)		सीमेन्स एंड हाल्स्के-शुकर्ट		बर्गमैन	१९०० में ठप हो गयी
ए० ई० जी० (जेनरल एलेक्ट्रिक कं०)				सीमेन्स एंड हाल्स्के-शुकर्ट			

१९१२ तक :

(१९०८ से इन दोनों के बीच गहरा "सहयोग" है)

प्रख्यात ए० ई० जी० (जेनरल एलेक्ट्रिक कम्पनी) के क़ब्ज़े में, जो इस प्रकार बढ़कर इतनी बड़ी हुई है, १७५ से २०० तक कम्पनियां ("होल्डिंग" पद्धति द्वारा), और कुल मिलाकर लगभग १,५०,००,००,००० मार्क की पूंजी है। अकेले विदेशों में ही दस से ज़्यादा देशों में इसकी अपनी चौंतीस एजेंसियां हैं, जिनमें से बारह ज्वाइंट-स्टाक कम्पनियां हैं। बहुत पहले १९०४ में ही, जर्मनी के बिजली-उद्योग द्वारा विदेशों में लगायी गयी पूंजी का अनुमान २३,३०,००,००० मार्क का लगाया जाता था। उसमें से ६,२०,००,००० मार्क की पूंजी रूस में लगी हुई थी। यह तो कहने की आवश्यकता नहीं कि ए० ई० जी० एक बहुत बड़ा "सम्मिलित कारखाना" है—अकेले उसकी उन कम्पनियों की संख्या जो कारख़ानों में माल तैयार करती हैं सोलह से कम नहीं है—जो बिजली के मोटे-मोटे तारों और इंसुलेटरों से लेकर मोटरें और वायुयान तक अत्यंत विविध प्रकार की चीज़ें तैयार करता है।

परन्तु यूरोप में जो संकेंद्रण हुआ वह भी अमरीका की इस संकेंद्रण की प्रक्रिया का ही एक अभिन्न अंग था; यह संकेंद्रण इस प्रकार हुआ:

जेनरल एलेक्ट्रिक कम्पनी

संयुक्त राज्य अमरीका:	टामसन-हाउस्टन कम्पनी यूरोप में अपनी एक फ़र्म स्थापित करती है	एडीसन कम्पनी यूरोप में फ़्रांसीसी एडीसन कम्पनी स्थापित करती है जो अपने पेटेन्ट निम्न जर्मन फ़र्म को बेच देती है
जर्मनी:	यूनियन एलेक्ट्रिक कम्पनी	जेनरल एलेक्ट्रिक कम्पनी (ए० ई० जी०)

जेनरल एलेक्ट्रिक कम्पनी (ए० ई० जी०)

इस प्रकार बिजली-उद्योग की **दो** "महान शक्तियों" का निर्माण हुआ: हेईनिग ने अपने लेख "बिजली ट्रस्ट का मार्ग" में लिखा था कि "संसार में इनके अलावा कोई बिजली की कम्पनियां ऐसी नहीं हैं जो इनसे **पूर्णतः** स्वतंत्र हों।" निम्नलिखित आंकड़ों से इन दो "ट्रस्टों" के कारोबार के उत्पादन तथा उनके आकार का अंदाज़ा लग सकता है, हालांकि यह अंदाज़ा अधूरा ही होगा:

	साल	आमदनी-रफ़्तनी (लाख मार्कों में)	कर्मचारियों की संख्या	शुद्ध मुनाफ़ा (लाख मार्कों में)
अमरीका: जेनरल एलेक्ट्रिक कं० (जी० ई० सी०)	१९०७	२,५२०	२८,०००	३५४
	१९१०	२,९८०	३२,०००	४५६
जर्मनी: जेनरल एलेक्ट्रिक कं० (ए० ई० जी०)	१९०७	२,१६०	३०,७००	१४५
	१९११	३,६२०	६०,८००	२१७

तो, १९०७ में जर्मन तथा अमरीकी ट्रस्टों ने आपस में एक समझौता किया जिसके द्वारा उन्होंने दुनिया को अपने बीच बांट लिया। उनके बीच प्रतियोगिता समाप्त हो गयी। अमरीकी जेनरल एलेक्ट्रिक कम्पनी (जी० ई० सी०) को संयुक्त राज्य अमरीका तथा कनाडा "मिले"। जर्मन जेनरल एलेक्ट्रिक कम्पनी (ए० ई० जी०) को जर्मनी, आस्ट्रिया, रूस, हालैंड, डेनमार्क, स्विट्ज़रलैंड, तुर्की तथा बालकन देश "मिले"। इस संबंध में भी ख़ास समझौते हुए, जो स्वाभाविक रूप से गुप्त थे, कि उद्योग की नयी शाखाओं में तथा उन "नये" देशों में जिनका बंटवारा अभी तक बाक़ायदा

नहीं हुआ था, "बेटी कम्पनियां" स्थापित करके घुसा जाये। इन दोनों ट्रस्टों के बीच आविष्कारों तथा प्रयोगों का आदान-प्रदान करने का भी समझौता हुआ।*

यह बात स्वतः स्पष्ट है कि इस ट्रस्ट से, जो वास्तव में अकेला और प्रायः सारी दुनिया में फैला हुआ है, जिसके क़ब्ज़े में कई अरब की पूंजी है, और दुनिया के कोने-कोने में जिसकी "शाखाएं", एजेंसियां, प्रतिनिधि तथा संबंध आदि हैं, टक्कर लेना कितना कठिन था, परन्तु दो शक्तिशाली ट्रस्टों के बीच दुनिया के बंटवारे का अर्थ यह नहीं होता कि यदि असमान विकास, युद्ध, दिवाले आदि के फलस्वरूप शक्तियों का पारस्परिक संबंध बदल जाये तो **पुनर्विभाजन** हो ही नहीं सकता।

इस प्रकार के पुनर्विभाजन की कोशिशों का, पुनर्विभाजन के लिए संघर्ष का एक शिक्षाप्रद उदाहरण तेल-उद्योग में मिलता है।

जीडेल्स ने १६०५ में लिखा, "दुनिया का तेल का बाज़ार आज भी अभी तक दो बहुत बड़े वित्तीय गुटों के बीच बंटा हुआ है—राकफ़ेलर की अमेरिकन स्टण्डैर्ड आयल कं० और राथशिल्ड एंड नोबेल, जिसका बाकू के रूसी तेल-क्षेत्रों पर नियंत्रण है। इन दोनों गुटों का आपस में गहरा संबंध है। परन्तु पिछले कई वर्षों से पांच शत्रुओं के कारण उनकी इजारेदारी के लिए ख़तरा पैदा हो गया है"**: (१) अमरीकी तेल-क्षेत्रों में तेल का समाप्त हो जाना; (२) बाकू की मांताशेव नामक कम्पनी की प्रतियोगिता; (३) आस्ट्रिया के तेल-क्षेत्र; (४) रूमानिया के तेल-क्षेत्र; (५) समुद्र-पार के तेल-क्षेत्र, विशेष रूप से डच उपनिवेशों में (सैमुएल तथा शेल की अत्यंत धनवान कम्पनियां, जिनका संबंध भी ब्रिटिश पूंजी से है)। इन गुटों में से अंतिम तीन गुटों का संबंध बड़े-बड़े जर्मन बैंकों के साथ है,

---

* Riesser, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक; Diouritch, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ २३६; Kurt Heinig, पहले उद्धृत किया गया लेख।

** जीडेल्स, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ १६३।

जिनमें सबसे प्रमुख स्थान विशाल *«Deutsche Bank»* का है। इन बैंकों ने "स्वयं" अपने पैर जमाने के उद्देश्य से स्वतंत्र तथा नियमित ढंग से, उदाहरण के लिए, रूमानिया के तेल-क्षेत्रों का विकास किया। १९०७ में रूमानिया के तेल-उद्योग में जो विदेशी पूंजी लगी हुई थी वह अनुमानतः १८,५०,००,००० फ़्रांक की थी जिसमें से ७,४०,००,००० जर्मन पूंजी थी।*

"दुनिया के बंटवारे" के लिए संघर्ष आरंभ हो गया, आर्थिक साहित्य में इसी शब्दावली का प्रयोग किया जाता है। एक तरफ़ तो राकफ़ेलर के "तेल ट्रस्ट" ने **हर चीज़** पर क़ब्ज़ा कर लेने की इच्छा से ख़ुद हालैंड में जाकर अपनी एक "बेटी कम्पनी" खड़ी की और अपने मुख्य शत्रु एंग्लो-डच शेल ट्रस्ट पर प्रहार करने के उद्देश्य से डच इंडीज़ में तेल-क्षेत्र ख़रीद लिये। दूसरी ओर, *«Deutsche Bank»* तथा जर्मनी के दूसरे बैंक रूमानिया को "अपने लिए बनाये रखने" और उसे राकफ़ेलर के ख़िलाफ़ रूस के साथ मिला देने के फेर में थे। राकफ़ेलर के पास कहीं अधिक पूंजी और तेल के परिवहन तथा वितरण की बहुत अच्छी व्यवस्था थी। इस संघर्ष की हार होनी थी और १९०७ में वह हुई भी, जिसमें *«Deutsche Bank»* की क़रारी हार हुई, उसके सामने दो ही रास्ते रह गये : या तो "तेल-उद्योग में अपने हितों" को ख़त्म कर दे और करोड़ों का घाटा उठाये या फिर घुटने टेक दे। उसने घुटने टेक देना ही बेहतर समझा और "तेल ट्रस्ट" के साथ एक ऐसा समझौता कर लिया जो उसके लिए बहुत नुक़सान का था। *«Deutsche Bank»* इसपर राज़ी हो गया कि वह "कोई ऐसी कोशिश नहीं करेगा जिससे अमरीकी हितों को हानि पहुंचे"। परन्तु समझौते में इसकी गुंजाइश रखी गयी थी कि यदि जर्मनी तेल की राज्यीय इजारेदारी क़ायम कर ले तो यह समझौता रद्द हो जायेगा।

इसके बाद "तेल का हास्यप्रधान नाटक" आरंभ हुआ। जर्मनी के

---

* Diouritch, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ २४५।

एक वित्त-सम्राट् फ़ान ग्विनर ने, जो «Deutsche Bank» के एक संचालक भी थे, अपने प्राइवेट सेक्रेटरी स्टास की मार्फ़त तेल की राज्यीय इजारेदारी के लिए एक मुहिम शुरू की। विशाल जर्मन बैंक के विशाल संगठन तथा उसके समस्त व्यापक "सम्पर्क" इस काम में जुटा दिये गये। अख़बारों में अमरीकी ट्रस्ट के "जूए" के ख़िलाफ़ "देशभक्तिपूर्ण" क्रोध उबल पड़ा और १५ मार्च, १९११ को राइख़स्टाग ने लगभग सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमें सरकार से तेल की एक इजारेदारी स्थापित करने का अनुरोध किया गया था। सरकार ने इस "लोकप्रिय" विचार को तुरन्त स्वीकार कर लिया और ऐसा प्रतीत होने लगा कि «Deutsche Bank» की चाल, जो अपने अमरीकी साझेदार को धोखा देने और राज्यीय इजारेदारी द्वारा अपने कारोबार को चमकाने की आशा लगाये बैठा था, सफल हो गयी। जर्मनी के तेल-सम्राट् बेशुमार मुनाफ़े के स्वप्न देखने लगे, जो रूस के शकर कारख़ानेदारों से कम नहीं होनेवाला था ... परन्तु, पहले तो, बड़े-बड़े जर्मन बैंक लूट के माल के बंटवारे के सवाल पर आपस में लड़ पड़े। «Disconto-Gesellschaft» बैंक ने «Deutsche Bank» के लोलुपतापूर्ण उद्देश्यों की क़लई खोल दी; दूसरे, राकफ़ेलर के साथ टक्कर की संभावना से सरकार भयभीत हो उठी, क्योंकि इसमें बहुत संदेह था कि जर्मनी को दूसरे स्रोतों से तेल मिल भी सकता था कि नहीं (रूमानिया का उत्पादन बहुत थोड़ा था); तीसरे, उसी समय जर्मनी का युद्ध की तैयारियों के लिए एक अरब मार्क के १९१३ वाले ऋण का प्रस्ताव स्वीकार किया गया था। तेल की इजारेदारी की योजना स्थगित कर दी गयी। कम से कम कुछ समय के लिए तो इस टक्कर में राकफ़ेलर के "तेल ट्रस्ट" की विजय हुई।

बर्लिन की समीक्षा-पत्रिका «Die Bank» ने इस प्रसंग में लिखा कि बिजली की इजारेदारी स्थापित करके और पानी से सस्ती बिजली बनाकर ही जर्मनी तेल ट्रस्ट के ख़िलाफ़ लड़ सकता है। इसके साथ ही

लेखक ने यह भी लिखा, "परन्तु बिजली की इजारेदारी उसी समय स्थापित होगी जब उत्पादकों को उसकी आवश्यकता होगी, अर्थात् उस समय जब कारोबार के ढह जाने का महान् संकट बिजली-उद्योग के दरवाज़े पर खड़ा होगा और जब वे विशालकाय महंगे बिजलीघर, जो इस समय बिजली की प्राइवेट 'कम्पनियों' द्वारा हर जगह बहुत पैसा लगाकर खड़े किये जा रहे हैं और जो शहरों, राज्यों आदि से आंशिक इजारेदारी भी प्राप्त करने लगे हैं, मुनाफ़े पर नहीं चलाये जा सकेंगे। उस समय जल-शक्ति का उपयोग करना पड़ेगा। पर उससे राज्य के ख़र्च पर सस्ती बिजली पैदा करना असंभव होगा; इसे भी 'राज्य' द्वारा नियंत्रित प्राइवेट इजारेदारी के हाथों में सौंप देना पड़ेगा क्योंकि प्राइवेट उद्योगों ने बहुत से समझौते कर रखे हैं और भारी मुआवज़े की शर्त लगा रखी है... नाइट्रेट की इजारेदारी के मामले में यही हुआ था, तेल की इजारेदारी के मामले में भी यही बात है, बिजली की इजारेदारी के मामले में भी यही होगा। समय आ गया है कि एक सुंदर सिद्धांत की चकाचौंध से अंधे हो जानेवाले हमारे राज्यीय समाजवाद के समर्थक आख़िरकार इस बात को समझ लें कि जर्मनी में इजारेदारियों ने कभी भी उपभोक्ताओं को फ़ायदा पहुंचाने का, या इजारेदारी चलानेवाले के मुनाफ़े का एक भाग भी राज्य को देने का उद्देश्य अपने सामने नहीं रखा है और न ही कभी परिणामस्वरूप इन दोनों में से कोई बात हुई है; उन्होंने हमेशा राज्य के हितों की बलि देकर उन निजी उद्योगों को, जिनका दिवाला निकलनेवाला था, दुबारा अपने पैरों पर खड़ा कर देने में सुविधा पहुंचाने का काम किया है।"*

जर्मन पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों को ऐसी महत्वपूर्ण स्वीकारोक्तियों पर मजबूर होना पड़ता है। यहां पर हम स्पष्ट रूप से देखते हैं कि वित्तीय

---

* *«Die Bank»* १९१२, १, पृष्ठ १०३६; १९१२, २, पृष्ठ ६२९; १९१३, १, पृष्ठ ३८८।

पूंजी के युग में निजी तथा राज्यीय इजारेदारियां किस प्रकार एक-दूसरे में गुंथी हुई हैं; किस प्रकार वे दोनों ही दुनिया के बंटवारे के लिए बड़े इजारेदारों के बीच होनेवाले साम्राज्यवादी संघर्ष की अलग-अलग कड़ियां हैं।

व्यापारिक जहाज़रानी के क्षेत्र में भी संकेंद्रण के अत्यधिक विकास की परिणति दुनिया के बंटवारे में हुई है। जर्मनी में दो शक्तिशाली कम्पनियां सबसे आगे आ गयी हैं: «*Hamburg-Amerika*" और «*Norddeutscher Lloyd*», जिनमें से प्रत्येक के पास (शेयरों तथा बांडों के रूप में) २०,००,००,००० मार्क की पूंजी और १८ करोड़ ५० लाख से १८ करोड़ ६० लाख मार्क की क़ीमत के जहाज़ हैं। दूसरी ओर, अमरीका में १ जनवरी, १६०३ को "इंटरनेशनल मर्केन्टाइल मैरीन कं०" की स्थापना हुई, जिसे मार्गन का ट्रस्ट कहा जाता है; यह कम्पनी नौ अमरीकी तथा ब्रिटिश जहाज़ी कम्पनियों को मिलाकर बनायी गयी थी और इसके पास १२,००,००,००० डालर (४८,००,००,००० मार्क) की पूंजी थी। बहुत पहले १६०३ में ही जर्मनी की विशालकाय कम्पनियों और इस अमरीकी-ब्रिटिश ट्रस्ट के बीच मुनाफ़े के बंटवारे के सिलसिले में दुनिया का बंटवारा कर लेने का समझौता हो गया था। जर्मन कम्पनियों ने अंग्रेज़-अमरीकी यातायात के क्षेत्र में प्रतियोगिता न करने का आश्वासन दिया। यह बात साफ़-साफ़ तय कर दी गयी कि कौन-कौन बंदरगाह किसके-किसके "हिस्से में आयेंगे", एक संयुक्त नियंत्रण-समिति की स्थापना कर दी गयी, इत्यादि। यह समझौता बीस वर्ष के लिए हुआ था और इसमें एक समझदारी की शर्त यह भी थी कि युद्ध छिड़ जाने पर यह समझौता रद्द हो जायेगा।*

इंटरनेशनल रेल कार्टेल के निर्माण की कहानी भी अत्यंत शिक्षाप्रद है। ब्रिटेन, बेलजियम तथा जर्मनी के रेल के कारख़ानों के मालिकों की तरफ़ से एक कार्टेल बनाने की पहली कोशिश अब से बहुत पहले १८८४ में एक

---

* रीसेर, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ १२५।

भयंकर औद्योगिक मंदी के ज़माने में की गयी थी। इन कारखानेवालों ने आपस में समझौता किया कि वे एक-दूसरे के देश के बाज़ारों में प्रतियोगिता नहीं करेंगे और उन्होंने विदेशों को निम्नलिखित अनुपात से आपस में बांट लिया था: ग्रेट ब्रिटेन ६६ प्रतिशत, जर्मनी २७ प्रतिशत, बेलजियम ७ प्रतिशत। भारत पूरी तरह ग्रेट ब्रिटेन के लिए अलग छोड़ दिया गया था। इन सबने मिलकर उस एक ब्रिटिश कम्पनी के ख़िलाफ़ जंग छेड़ दी जो कार्टेल में शामिल नहीं हुई थी, और इस लड़ाई का ख़र्च कुल बिक्री में से कुछ प्रतिशत भाग काटकर निकाला जाता था। परन्तु १८८६ में जब दो ब्रिटिश कम्पनियां इससे अलग हो गयीं तो यह कार्टेल ढह गया। यह बात अत्यंत सारगर्भित है कि इसके बाद जो तेज़ी के ज़माने आये उनमें भी कोई समझौता नहीं हो पाया।

१६०४ के आरंभ में जर्मनी का स्टील सिंडीकेट बनाया गया। नवम्बर १६०४ में इंटरनेशनल रेल कार्टेल दुबारा खड़ा किया गया और बंटवारा इस अनुपात से हुआ: इंगलैंड ५३.५ प्रतिशत, जर्मनी २८.८३ प्रतिशत, बेलजियम १७.६७ प्रतिशत। बाद में फ़्रांस भी इसमें शामिल हो गया और उसे पहले, दूसरे तथा तीसरे वर्षों के दौर में १०० प्रतिशत की सीमा से बाहर, अर्थात् १०४.८ आदि के कुल योग में से, क्रमशः ४.८ प्रतिशत, ५.८ प्रतिशत तथा ६.४ प्रतिशत का हिस्सा मिला। १६०५ में यूनाइटेड स्टेट्स स्टील कार्पोरेशन इस कार्टेल में शामिल हुआ; फिर आस्ट्रिया तथा स्पेन शामिल हुए। १६१० में फ़ोगेल्स्टीन ने लिखा, "इस समय दुनिया का बंटवारा पूरा हो चुका है, और बड़े-बड़े उपभोक्ता, मुख्यतः राज्यीय रेलें—क्योंकि दुनिया का बंटवारा उनके हितों को ध्यान में रखे बिना ही कर दिया गया है—अब कवि की तरह बृहस्पति ग्रह के स्वर्ग में रह सकती हैं।"*

हम इंटरनेशनल ज़िंक सिंडीकेट का भी उल्लेख करेंगे, जिसकी

---

* Vogelstein, «*Organisationsformen*», पृष्ठ १०० ।

स्थापना १६०६ में हुई थी और जिसने उत्पादन को बहुत सही-सही हिसाब लगाकर कारखानों के पांच समूहों में बांट दिया था: जर्मन, बेलजियम, फ्रांसीसी, स्पेनी तथा ब्रिटिश; और इंटरनेशनल डायनामाइट ट्रस्ट का भी जिसके बारे में लिएफ़मैन ने कहा है कि यह "जर्मनी के समस्त बारूद बनानेवाले कारखानों का बिल्कुल आधुनिक घनिष्ठ गठजोड़ है, जिन्होंने इसी आधार पर संगठित फ्रांस तथा अमरीका के बारूद बनानेवाले कारखानों के साथ मिलकर एक तरह से दुनिया को आपस में बांट लिया है।"*

लिएफ़मैन ने हिसाब लगाया है कि १८६७ में कुल मिलाकर लगभग चालीस ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय ट्रस्ट थे जिनमें जर्मनी का हिस्सा था, और १६१० में उनकी संख्या सौ के लगभग थी।

कुछ पूंजीवादी लेखकों ने (जिनमें का० कौत्स्की भी शामिल हो गये हैं; उन्होंने अपने उन मार्क्सवादी विचारों को बिल्कुल त्याग दिया है जो, उदाहरण के लिए, १६०६ में उनके थे) यह मत प्रकट किया है कि चूंकि अन्तर्राष्ट्रीय काटल पूंजी के अन्तर्राष्ट्रीयकरण की सबसे ज्वलंत अभिव्यक्ति हैं, इसलिए उनसे पूंजीवाद के अंतर्गत राष्ट्रों के बीच शांति की आशा उत्पन्न होती है। सिद्धांत की दृष्टि से यह मत बिल्कुल बेतुका है, और व्यवहार में यह मत एक कुतर्क और बदतरीन क़िस्म के अवसरवाद का बेईमानी से भरा हुआ समर्थन है। अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेलों से पता चलता है कि पूंजीवादी इजारेदारियां किस हद तक विकसित हो चुकी हैं, और विभिन्न पूंजीवादी संघों के बीच संघर्ष का **उद्देश्य क्या है**। यह आख़िरवाली बात बहुत महत्वपूर्ण है; जो कुछ हो रहा है, उसके ऐतिहासिक-आर्थिक तात्पर्य का पता हमें केवल इसी से चलता है; क्योंकि बदलते हुए अपेक्षतः विशिष्ट तथा अस्थायी कारणों के साथ-साथ संघर्ष के **रूपों में** तो निरंतर परिवर्तन होते रह सकते हैं और होते भी हैं, परन्तु

---

* Liefmann, «*Kartelle und Trusts*», दूसरा संस्करण, पृष्ठ १६१।

जब तक वर्गों का अस्तित्व है तब तक इस संघर्ष का **सार-तत्व**, उनकी वर्गगत **विषय-वस्तु हरगिज़ नहीं बदल सकती।** स्वाभाविक रूप से यह बात, उदाहरण के लिए, जर्मन पूंजीपति वर्ग के हित में है–अपने सैद्धांतिक तर्कों की दृष्टि से कौत्स्की जिसकी ओर चले गये हैं (इसपर हम आगे चलकर विचार करेंगे)–कि वर्तमान आर्थिक संघर्ष (दुनिया के बंटवारे) के **सार-तत्व** को छुपाया जाये और संघर्ष के कभी किसी और कभी किसी **रूप** पर ज़ोर दिया जाये। कौत्स्की भी यही ग़लती करते हैं। ज़ाहिर है, हमारे ध्यान में अकेला जर्मन पूंजीपति वर्ग ही नहीं बल्कि सारे संसार का पूंजीपति वर्ग है। पूंजीपति दुनिया का बंटवारा किसी विशेष दुष्टता की भावना के कारण नहीं बल्कि इसलिए करते हैं कि संकेंद्रण जिस हद तक पहुंच चुका होता है वह उन्हें मुनाफ़ा कमाने के लिए यह रास्ता अपनाने पर मजबूर कर देता है। और वे यह बंटवारा "पूंजी के अनुपात से", "शक्ति के अनुपात से" करते हैं क्योंकि बिकाऊ माल के उत्पादन और पूंजीवाद के अंतर्गत बंटवारे का कोई दूसरा तरीक़ा हो ही नहीं सकता। परन्तु शक्ति का कम या ज़्यादा होना इसपर निर्भर करता है कि आर्थिक तथा राजनीतिक विकास कहां किस हद तक हुआ है। जो कुछ हो रहा है उसे समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम इस बात को जानें कि शक्ति में परिवर्तन होने से कौनसे प्रश्न तय होते हैं। यह प्रश्न कि ये परिवर्तन "शुद्धतः" आर्थिक होते हैं या **ग़ैर-आर्थिक** (उदाहरण के लिए सैनिक) एक गौण प्रश्न है, जिससे पूंजीवाद के नवीनतम युग से संबंधित मूलभूत विचारों में ज़रा भी अंतर नहीं पड़ता। पूंजीवादी संघों के बीच संघर्ष तथा समझौतों के **सार-तत्व** के स्थान पर संघर्ष तथा समझौतों के रूप (जो आज शांतिपूर्ण होता है, कल युद्धपूर्ण और परसों फिर युद्धपूर्ण) का प्रश्न रखना स्तर से बहुत नीचे गिरकर एक कुतर्की की भूमिका को अपनाना है।

पूंजीवाद की नवीनतम अवस्था का युग हमें बताता है कि पूंजीवादी संघों के बीच कुछ ऐसे संबंध पैदा हो जाते हैं जो दुनिया के आर्थिक

बंटवारे पर **आधारित होते हैं**; जबकि इन्हीं के समानांतर तथा इन्हीं के सिलसिले में राजनीतिक संघों के बीच, राज्यों के बीच, कुछ संबंध पैदा होते हैं जिनका आधार दुनिया के क्षेत्रीय बंटवारे पर, उपनिवेशों के लिए संघर्ष पर, "आर्थिक क्षेत्र के लिए संघर्ष" पर होता है।

६. बड़ी ताक़तों के बीच दुनिया का बंटवारा

"यूरोपीय उपनिवेशों के क्षेत्रीय विकास" के बारे में अपनी पुस्तक में भूगोलवेत्ता अ० सुपान* ने उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में इस विकास का संक्षिप्त सार इस प्रकार दिया है:

यूरोपीय औपनिवेशिक ताक़तों के आधिपत्य के इलाक़ों का प्रतिशत अनुपात

(संयुक्त राज्य अमरीका सहित)

	१८७६	१९००	कमी या बढ़ती
अफ़्रीका में	१०.८	९०.४	+७९.६
पोलीनेशिया में	५६.८	९८.९	+४२.१
एशिया में	५१.५	५६.६	+ ५.१
आस्ट्रेलिया में	१००.०	१००.०	–
अमरीका में	२७.५	२७.२	– ०.३

अंत में वह लिखते हैं, "इसलिए इस काल की लाक्षणिक विशेषता अफ़्रीका तथा पोलीनेशिया का बंटवारा है।" चूंकि एशिया तथा अमरीका में कोई ऐसे इलाक़े नहीं हैं जो ख़ाली हों—अर्थात् जिनपर किसी न किसी राज्य का क़ब्ज़ा न हो—इसलिए सुपान के निष्कर्ष में कुछ और भी जोड़कर यह कहना आवश्यक है कि इस विचाराधीन काल की लाक्षणिक विशेषता

---

* A. Supan, *«Die territoriale Entwicklung der europäischen Kolonien»*, १९०६, पष्ठ २५४।

अंतिम रूप से पूरे भूमंडल का बंटवारा है – अंतिम रूप से इस माने में नहीं कि अब उसका **पुनर्विभाजन** असंभव है, इसके विपरीत **पुनर्विभाजन** संभव तथा अनिवार्य हैं – बल्कि इस माने में कि पूंजीवादी देशों की औपनिवेशिक नीति ने हमारे इस ग्रह पर ख़ाली इलाक़ों पर आधिपत्य जमाने का काम **पूरा कर लिया है**। पहली बार दुनिया पूरी तरह बंट गयी है और इसलिए अब भविष्य में उसके पुनर्विभाजन **ही** संभव हैं, अर्थात् अब यह नहीं हो सकता कि कोई ऐसा इलाक़ा जिसका कोई मालिक न हो किसी "मालिक" के क़ब्ज़े में आ जाये, बल्कि अब तो केवल यह हो सकता है कि इलाक़े एक "मालिक" के हाथ से दूसरे के हाथ में चले जायें।

इसलिए हम विश्व औपनिवेशिक युग के एक ख़ास युग से होकर गुज़र रहे हैं, जिसका घनिष्ठतम संबंध "पूंजीवाद के विकास की नवीनतम अवस्था" के साथ, वित्तीय पूंजी के साथ है। इस कारण, सबसे पहले यह आवश्यक है कि तथ्यों पर अधिक विस्तारपूर्वक विचार किया जाये, ताकि इस बात का पता यथासंभव सही-सही लगाया जा सके कि यह युग किस बात में ससे पहले के युगों से भिन्न है, और वर्तमान स्थिति क्या है। सबसे पहले तो इस प्रसंग में तथ्यों से संबंधित दो प्रश्न उठते हैं: क्या औपनिवेशिक नीति का उग्र रूप धारण करना, उपनिवेशों के लिए संघर्ष का तेज़ होना, वित्तीय पूंजी के इस युग में ही देखने में आता है? और इस एतबार से इस समय दुनिया किस ढंग से बंटी हुई है?

उपनिवेशीकरण के इतिहास के बारे में अपनी पुस्तक में अमरीकी लेखक मारिस* ने उन्नीसवीं शताब्दी के विभिन्न कालों में ग्रेट ब्रिटेन, फ़्रांस तथा जर्मनी के उपनिवेशों से संबंधित तथ्य-सामग्री को सार-रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने जो नतीजे निकाले हैं उनका संक्षिप्त सार इस प्रकार है:

---

* Henry C. Morris, *«The History of Colonization»*, New York 1900, Vol. II, p. 88, Vol I, p. 419, Vol. II, p 304.

उपनिवेश

वर्ष	ग्रेट ब्रिटेन		फ़्रांस		जर्मनी	
	क्षेत्रफल (लाख वर्ग मील)	आबादी (लाख)	क्षेत्रफल (लाख वर्ग मील)	आबादी (लाख)	क्षेत्रफल (लाख वर्ग मील)	आबादी (लाख)
१८१५-३० .	?	१,२६४	०.२	५.०	–	–
१८६० . . .	२५	१,४५१	२.०	३४.०	–	–
१८८० . . .	७७	२,६७९	७.०	७५.०	–	–
१८९९ . . .	९३	३,०९०	३७.०	५६४.०	१०.०	१४७.०

ग्रेट ब्रिटेन के लिए औपनिवेशिक विजयों के अत्यधिक विस्तार का काल १८६० से १८८० तक था, और उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम बीस वर्षों में भी यह विस्तार बहुत काफ़ी हुआ। फ़्रांस और जर्मनी के लिए यह काल ठीक इन्हीं बीस वर्षों के भीतर आता है। हम पहले देख चुके हैं कि इजारेदारी से पहले के पूंजीवाद का विकास अर्थात् उस पूंजीवाद का जिसमें खुली प्रतियोगिता का बोलबाला था, उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें तथा आठवें दशक में अपनी चोटी पर पहुंच गया था। अब हम देखते हैं कि औपनिवेशिक विजयों में अत्यधिक "तेज़ी" **ठीक इसी काल के बाद** आरंभ होती है और यह कि दुनिया के क्षेत्रीय विभाजन का संघर्ष असाधारण रूप से तीव्र हो जाता है। इसलिए इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि इजारेदारी पूंजीवाद की अवस्था में, वित्तीय पूंजी में पूंजीवाद के संक्रमण का **संबंध** दुनिया के बंटवारे के संघर्ष के तीव्र होने के साथ है।

साम्राज्यवाद के विषय पर अपनी रचना में हाबसन ने १८८४

से १६०० तक के वर्षों को मुख्य यूरोपीय राज्यों के तीव्र "विस्तरण" का युग ठहराया है। उनके अनुमान के अनुसार, ग्रेट ब्रिटेन ने इन वर्षों के दौरान में ३७,००,००० वर्ग मील के इलाक़े पर क़ब्ज़ा किया जिसकी आबादी ५,७०,००,००० थी; फ़्रांस ने ३६,००,००० वर्ग मील के इलाक़े पर क़ब्ज़ा किया जिसकी आबादी ३,६५,००,००० थी; जर्मनी ने १०,००,००० वर्ग मील के इलाक़े पर क़ब्ज़ा किया जिसकी आबादी १,४७,००,००० थी; बेलजियम ने ६,,००,००० वर्ग मील पर क़ब्ज़ा किया जिसकी आबादी ३,००,००,००० थी; पुर्तगाल ने ८,००,००० वर्ग मील पर क़ब्ज़ा किया जिसकी आबादी ६०,००,००० थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में, और विशेष रूप से १८८० के बाद से, सभी पूंजीवादी देशों द्वारा उपनिवेशों की खोज में रहना कूटनीति तथा वैदेशिक राजनीति के इतिहास की एक सर्वविदित बात है।

ग्रेट ब्रिटेन में उस काल में, जब खुली प्रतियोगिता सबसे ज़्यादा फल-फूल रही थी, अर्थात् १८४० से १८६० के बीच, ब्रिटेन के प्रमुख पूंजीवादी राजनीतिज्ञ औपनिवेशिक नीति **के विरुद्ध** थे और उनका यह मत था कि उपनिवेशों की मुक्ति तथा उनका ब्रिटेन से पूरी तरह अलग हो जाना अनिवार्य तथा वांछनीय है। एम० बियर ने "आधुनिक ब्रिटिश साम्राज्यवाद"* शीर्षक एक लेख में, जो १८६८ में प्रकाशित हुआ था, यह बताया है कि १८५२ में डिज़रैली ने, जो एक ऐसे राजनीतिज्ञ थे जिनका झुकाव आम तौर पर साम्राज्यवाद की ओर रहता था, घोषणा की थी कि "उपनिवेश हमारी गरदन में चक्की के पाटों की तरह बंधे हुए हैं।" परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में ब्रिटेन के तत्कालीन नायक सेसील रोड्स तथा जोज़ेफ़ चैम्बरलेन थे, जो खुलेआम साम्राज्यवाद का समर्थन करते थे और बिल्कुल बेधड़क होकर साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण करते थे।

---

* *«Die Neue Zeit»*, १६, १, १८६८, पृष्ठ ३०२।

इस बात की ओर ध्यान देना भी महत्वपूर्ण है कि ब्रिटेन के ये प्रमुख पूंजीवादी राजनीतिज्ञ उस समय ही आधुनिक साम्राज्यवाद के दो प्रकार के आधारों के पारस्परिक संबंध को देखने लगे थे, एक तो वे आधार जिन्हें शुद्ध आर्थिक आधार कहा जा सकता है और दूसरे राजनीतिक-सामाजिक आधार। चैम्बरलेन साम्राज्यवाद को एक "सच्ची, बुद्धिमत्तापूर्ण तथा मितव्ययिता की नीति" कहकर उसका प्रचार करते थे और विशेष रूप से जर्मनी, बेलजियम तथा अमरीका की प्रतियोगिता की ओर संकेत करते थे, जिसका मुक़ाबला ग्रेट ब्रिटेन को विश्व के बाज़ार में करना पड़ रहा था। पूंजीपति कार्टेल, सिंडीकेट तथा ट्रस्ट बनाते गये और यह कहते रहे कि इजारेदारियों में ही मुक्ति है। पूंजीपति वर्ग के राजनीतिक नेताओं ने भी इसी बात को दोहराया कि इजारेदारियों में ही मुक्ति है और जल्दी-जल्दी दुनिया के उन हिस्सों पर क़ब्ज़ा करने लगे जिनका बंटवारा अभी तक नहीं हुआ था। और सेसील रोड्स के गहरे मित्र पत्रकार स्टेड से हमें मालूम हुआ कि १८९५ में रोड्स ने साम्राज्यवाद के बारे में अपने विचार उनसे इन शब्दों में व्यक्त किये थे: "कल मैं लंदन के ईस्ट एंड" (मज़दूरों की बस्ती) "में था और मैं बेरोज़गारों की एक सभा में गया। मैंने उनके रोषपूर्ण भाषण सुने, जो केवल 'रोटी, रोटी!' की पुकार थे, और घर लौटते समय मैं रास्ते भर इस दृश्य पर विचार करता रहा और साम्राज्यवाद के महत्व के बारे में मेरा विश्वास पहले से भी अधिक दृढ़ हो गया... मेरा चिरपोषित विचार सामाजिक समस्या का हल है, अर्थात् यह कि ब्रिटेन (यूनाइटेड किंगडम) के ४,००,००,००० निवासियों को रक्तपातपूर्ण गृहयुद्ध से बचाने के लिए, हम औपनिवेशिक राजनीतिज्ञों को नयी ज़मीनें हासिल करनी चाहिए जहां हम यहां की फ़ालतू आबादी को बसा सकें, हमें यहां के कारख़ानों तथा खानों की पैदावार के लिए नयी मंडियां जुटानी चाहिए। जैसा कि मैंने हमेशा कहा है साम्राज्य एक

दाल-रोटी का सवाल है। यदि आप गृहयुद्ध से बचना चाहते हैं तो आपको साम्राज्यवादी बनना पड़ेगा।"*

यह बात सेसील रोड्स ने १८९५ में कही थी, उस व्यक्ति ने जो करोड़पति था, जो वित्त-सम्राट था, जिसके कंधों पर अंग्रेज़-बोएर युद्ध की ज़िम्मेदारी सबसे अधिक थी। यह तो सही है कि जिस ढंग से उन्होंने साम्राज्यवाद की हिमायत की है वह बहुत ही भोंडा और बेहया तरीक़ा है, परन्तु सारतः वह उस "सिद्धांत" से भिन्न नहीं है जिसका प्रचार मास्लोव, ज़्यूदेकुम, पोत्रेसोव, डेविड तथा रूसी मार्क्सवाद के संस्थापक तथा अन्य सज्जन करते हैं। सेसील रोड्स कुछ ज़्यादा ईमानदार सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी थे...

दुनिया का क्षेत्रीय विभाजन जिस ढंग से हुआ है, और इस संबंध में पिछले कुछ दशकों में जो परिवर्तन हुए हैं, उनका यथासंभव सही-सही चित्र प्रस्तुत करने के लिए हम उस तथ्य-सामग्री का उपयोग करेंगे जो सुपान ने दुनिया की सभी ताक़तों के औपनिवेशिक प्रदेशों के बारे में अपनी उस पुस्तक में दी है जिसका उद्धरण ऊपर दिया जा चुका है। सुपान ने १८७६ और १९०० के वर्षों को लिया है। हम १८७६ और १९१४ के वर्षों को लेंगे और १९१४ के लिए सुपान के आंकड़ों के बजाय हूबनर की "भौगोलिक तथा सांख्यिकीय तालिकाएं" में दिये गये ज़्यादा हाल के आंकड़ों को उद्धृत करेंगे; १८७६ का वर्ष बहुत ठीक चुना गया है क्योंकि उसी समय पर पहुंचकर हम कह सकते हैं कि पश्चिमी यूरोपीय पूंजीवाद के विकास की इजारेदारी से पहलेवाली मंज़िल मुख्यतः पूरी हो चुकी थी। सुपान ने केवल उपनिवेशों के आंकड़े दिये हैं; दुनिया के बंटवारे का अधिक पूर्ण चित्र प्रस्तुत करने के लिए हम इसे उपयोगी समझते हैं कि हम ग़ैर-औपनिवेशिक तथा अर्द्ध-

---

*उपरोक्त, पृष्ठ ३०४।

-औपनिवेशिक देशों के बारे में भी संक्षिप्त आंकड़े जोड़ दें; अर्द्ध-औपनिवेशिक देशों की श्रेणी में हम फ़ारस, चीन तथा तुर्की को रखते हैं; इनमें से पहला देश लगभग पूरी तरह एक उपनिवेश बन चुका है, दूसरा तथा तीसरा देश उपनिवेश बनते जा रहे हैं।

इस प्रकार हमें निम्नलिखित संक्षिप्त विवरण मिलता है:

बड़ी ताक़तों के औपनिवेशिक प्रदेश
(लाख वर्ग किलोमीटरों में और लाख निवासियों में)

	उपनिवेश				उपनिवेशों के मालिक देश		कुल योग	
	१८७६		१९१४		१९१४		१९१४	
	क्षेत्रफल	आबादी	क्षेत्रफल	आबादी	क्षेत्रफल	आबादी	क्षेत्रफल	आबादी
ग्रेट ब्रिटेन . . .	२२५	२,५१९	३३५	३,९३५	३	४६५	३३८	४,४००
रूस	१७०	१५९	१७४	३३२	५४	१,३६२	२२८	१,६९४
फ़्रांस	९	६०	१०६	५५५	५	३९६	१११	९५१
जर्मनी	—	—	२९	१२३	५	६४९	३४	७७२
सं० रा० अमरीका	—	—	३	९७	९४	९७०	९७	१,०६७
जापान	—	—	३	१९२	४	५३०	७	७२२
६ बड़ी ताक़तों का कुल योग	४०४	२,७३८	६५०	५,२३४	१६५	४,३७२	८१५	९,६०६
दूसरी ताक़तों (बेलजियम, हालैंड, आदि) के उपनिवेश							९९	४५३
अर्द्ध-औपनिवेशिक देश (फ़ारस, चीन, तुर्की)							१४५	३,६१२
दूसरे देश							२८०	२,८९९
सारी दुनिया का कुल योग							१,३३९	१६,५७०

इन आंकड़ों से हम स्पष्ट रूप से देखते हैं कि उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों के संगम पर दुनिया का बंटवारा कितनी "पूरी तरह" हो चुका था। १८७६ के बाद औपनिवेशिक प्रदेशों के विस्तार में अत्यधिक वृद्धि हुई, पचास प्रतिशत से अधिक, छः सबसे बड़ी ताक़तों के उपनिवेशों का क्षेत्रफल ४,००,००,००० वर्ग किलोमीटर से बढ़कर ६,५०,००,००० वर्ग किलोमीटर हो गया; यह वृद्धि २,५०,००,००० वर्ग किलोमीटर की है, अर्थात् उपनिवेशों पर आधिपत्य रखनेवाले देशों के क्षेत्रफल (१,६५,००,००० वर्ग किलोमीटर) से पचास प्रतिशत अधिक। १८७६ में तीन ताक़तें ऐसी थीं जिनके पास कोई उपनिवेश नहीं थे और चौथी के पास, फ़्रांस के पास, नहीं के बराबर थे। १९१४ तक इन चार ताक़तों ने १,४१,००,००० वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल के, अर्थात् यूरोप के कुल क्षेत्रफल से लगभग पचास प्रतिशत अधिक, उपनिवेशों पर क़ब्ज़ा कर लिया था, जिनकी आबादी लगभग १०,००,००,००० थी। औपनिवेशिक प्रदेशों में वृद्धि की रफ़्तार में बहुत अधिक असमानता है। उदाहरण के लिए, यदि हम फ़्रांस, जर्मनी तथा जापान की तुलना करें, जिनमें क्षेत्रफल तथा आबादी की दृष्टि से बहुत ज़्यादा अंतर नहीं है, तो हम देखेंगे कि जर्मनी तथा जापान ने मिलाकर कुल जितने औपनिवेशिक प्रदेश पर क़ब्ज़ा किया है उससे लगभग तिगुने इलाक़े पर फ़्रांस ने अपना आधिपत्य स्थापित किया है। जिस काल पर हम इस समय विचार कर रहे हैं उसके आरंभ में शायद वित्तीय पूंजी की मात्रा की दृष्टि से भी फ़्रांस उससे कई गुना अधिक धनवान था, जितना कि जर्मनी और जापान मिलाकर थे। शुद्धतः आर्थिक परिस्थितियों के अतिरिक्त, और उनके आधार पर, भौगोलिक तथा अन्य परिस्थितियां भी औपनिवेशिक प्रदेशों के आकार पर प्रभाव डालती हैं। बड़े पैमाने के उद्योगों, विनिमय तथा वित्तीय पूंजी के दबाव के कारण पिछले कुछ दशकों में दुनिया में सबको समान

स्तर पर ले आने, विभिन्न देशों की आर्थिक तथा रहन-सहन की परिस्थितियों को समान स्तर पर ले आने की प्रक्रिया कितनी ही प्रबल क्यों न रही हो, पर अब भी काफ़ी अंतर बाक़ी है; और जिन छः ताक़तों का उल्लेख किया गया है उनमें हम देखते हैं कि सबसे पहले तो अल्पवयस्क पूंजीवादी देश (अमरीका, जर्मनी तथा जापान) हैं जिनकी प्रगति असाधारण तीव्र गति से हुई है; दूसरे ऐसे देश हैं जिनका पूंजीवादी विकास पुराना है (फ़ांस तथा ग्रेट ब्रिटेन), जिनकी प्रगति इधर कुछ समय से उपरोक्त देशों की तुलना में बहुत धीमी रही है, और तीसरे हम एक ऐसा देश देखते हैं जो आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक पिछड़ा हुआ है (रूस), जहां आधुनिक पूंजीवादी साम्राज्यवाद, जिसे कहना चाहिए, पूंजीवाद से पहले के संबंधों के एक बहुत ही घने जाल में उलझा हुआ है।

बड़ी ताक़तों के उपनिवेशों के साथ ही हमने छोटे राज्यों के छोटे उपनिवेशों को रखा है जो, एक तरह से, उपनिवेशों के उस "पुनर्विभाजन" का आगामी लक्ष्य बनेंगे जो संभव है, और कदाचित होगा भी। इनमें से अधिकांश छोटे राज्य अपने उपनिवेशों पर अपना आधिपत्य केवल इसलिए बनाये रख पाते हैं कि बड़ी ताक़तों के बीच हितों की टक्कर होती है, उनमें संघर्ष होते हैं, आदि, जिनके कारण वे लूट के माल के बंटवारे के बारे में आपस में किसी समझौते पर नहीं पहुंच पातीं। अर्द्ध-औपनिवेशिक देश उन संक्रमणकालीन रूपों का एक उदाहरण हैं जो प्रकृति तथा समाज के सभी क्षेत्रों में पाये जाते हैं। सभी आर्थिक तथा सभी अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में वित्तीय पूंजी इतनी बड़ी, बल्कि कहा जा सकता है, इतनी निर्णायक शक्ति है कि वह उन राज्यों को भी, जो पूर्णतम राजनीतिक स्वतंत्रता का उपभोग करते हैं, अपने अधीन कर लेने की क्षमता रखती है और आधीन कर भी लेती है। हम शीघ्र ही इसके उदाहरण देखेंगे। ज़ाहिर है, वित्तीय पूंजी ऐसी पराधीनता को सबसे अधिक "सुविधाजनक" पाती है और उसी से सबसे

अधिक मुनाफ़ा बटोर सकती है जिसमें अधीन किये गये देशों तथा जातियों की राजनीतिक स्वतंत्रता नष्ट हो जाये। इस प्रसंग में अर्द्ध-औपनिवेशिक देश "मध्यवर्ती अवस्था" का एक लाक्षणिक उदाहरण हैं। यह स्वाभाविक ही है कि इन अर्द्ध-परतंत्र देशों के लिए संघर्ष वित्तीय पूंजी के युग में, जबकि बाक़ी सारी दुनिया का बंटवारा हो चुका है, विशेष रूप से तीव्र हो जाये।

पूंजीवाद की इस नवीनतम अवस्था से पहले, और पूंजीवाद से भी पहले, औपनिवेशिक नीति तथा साम्राज्यवाद का अस्तित्व था। रोम, जिसकी स्थापना दासता की बुनियाद पर हुई थी, एक औपनिवेशिक नीति का अनुसरण करता था तथा साम्राज्यवाद के मार्ग पर चलता था। परन्तु साम्राज्यवाद के बारे में वे "स्थूल" लम्बे-चौड़े तर्क, जिनमें विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पद्धतियों के मूलभूत अंतर को भुला दिया जाता है, या पीछे डाल दिया जाता है, अनिवार्य रूप से बहुत निम्न-स्तर की अत्यंत नीरस ओछी बातों का, या फिर ऐसी दंभपूर्ण तुलनाओं का रूप धारण कर लेते हैं जैसे "वृहत्तर रोम तथा वृहत्तर ब्रिटेन"।* पूंजीवाद की पिछली अवस्थाओं की पूंजीवादी औपनिवेशिक नीति भी वित्तीय पूंजी की औपनिवेशिक नीति से मूलतः भिन्न है।

बड़े-बड़े पूंजीपतियों के इजारेदार संघों का प्रभुत्व पूंजीवाद की नवीनतम अवस्था की मुख्य विशेषता है। ये इजारेदारियां उस समय सबसे अधिक दृढ़ रूप से स्थापित हो जाती हैं जब कोई एक समूह कच्चे माल के समस्त स्रोतों पर क़ब्ज़ा कर लेता है, और हम देख चुके हैं कि अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवादी संघ इस बात के लिए किस प्रकार अपना पूरा ज़ोर लगा देते हैं कि उनके प्रतिद्वंद्वियों के लिए उनके साथ प्रतियोगिता करना असंभव हो जाये, उदाहरणार्थ, वे लोहे के खान-क्षेत्र, तेल-क्षेत्र

---

* C. P. Lucas, «*Greater Rome and Greater Britain*», Oxf. 1912 (वृहत्तर रोम तथा वृहत्तर ब्रिटेन) या Earl of Cromer's «*Ancient and Modern Imperialism*» (प्राचीन तथा आधुनिक साम्राज्यवाद), लंदन १६१०।–अनु०

आदि ख़रीद लेते हैं। केवल उपनिवेशों पर क़ब्ज़ा होने से ही इजारेदारियों को अपने प्रतियोगियों के साथ संघर्ष में हर प्रकार के ख़तरे से मुक्त रहने की गारंटी होती है, जिसमें यह ख़तरा भी शामिल है कि उनके प्रतियोगी कहीं राज्य की इजारेदारी क़ायम करने का क़ानून बनाकर अपना बचाव न कर लें। पूंजीवाद जितना ही विकसित होता है, जितनी ही तीव्रता के साथ कच्चे माल की कमी अनुभव होने लगती है, प्रतियोगिता तथा सारी दुनिया में कच्चे माल की खोज जितना ही उग्र रूप धारण करती जाती है, उतनी ही ज़्यादा हद तक सब कुछ दांव पर लगाकर उपनिवेशों को हथियाने का संघर्ष होने लगता है।

शिल्दर लिखते हैं, "यद्यपि संभव है कुछ लोगों को इस बात में विरोधाभास दिखायी दे पर यह बात दावे के साथ कही जा सकती है कि उस निकट भविष्य में ही, जिसकी कि हम कमोबेश सही-सही कल्पना कर सकते हैं, शहरों की आबादी तथा औद्योगिक आबादी में वृद्धि में खाने-पीने की चीज़ों की कमी के कारण उतनी रुकावट नहीं पड़ेगी जितनी कि उद्योगों के लिए कच्चे माल की कमी के कारण।" उदाहरण के लिए, लकड़ी की – जिसकी क़ीमत लगातार बढ़ती जा रही है, – चमड़े की और कपड़ा-उद्योग के लिए आवश्यक कच्चे माल की कमी बढ़ती जा रही है। "कारखानेदार संघ पूरे विश्व अर्थतंत्र में कृषि तथा उद्योगों के बीच एक संतुलन स्थापित करने की पूरी कोशिश कर रहे हैं; इसके एक उदाहरण के रूप में हम कई सबसे महत्वपूर्ण औद्योगिक देशों के सूत कातनेवालों के संगठनों के अन्तर्राष्ट्रीय संघ का, जिसकी स्थापना १६०४ में हुई थी, और फ़्लैक्स कातनेवालों के संगठनों के यूरोपीय संघ का उल्लेख कर सकते हैं, जिसकी स्थापना उसी नमूने पर १६१० में हुई थी।"*

---

* Schilder, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ ३८-४२।

पूंजीवादी सुधारवादी, और उनमें भी ख़ास तौर पर कौत्स्की के आजकल के अनुयायी, ज़ाहिर है, इस प्रकार के तथ्यों के महत्व को कम करने की कोशिश करते हुए यह दलील देते हैं कि "महंगी और ख़तरनाक" औपनिवेशिक नीति के बिना खुले बाज़ार में कच्चा माल प्राप्त करना "संभव होगा"; और यह कि कृषि की परिस्थितियों में आम तौर पर "केवल" सुधार करके कच्चे माल की उपलब्ध मात्रा को बहुत ज़्यादा बढ़ा लेना "संभव होगा"। परन्तु इस प्रकार की दलीलें साम्राज्यवाद की तरफ़ से एक सफ़ाई, उस पर मुलम्मा चढ़ाने की कोशिश, बन जाती हैं क्योंकि उनमें पूंजीवाद की नवीनतम अवस्था की मुख्य विशेषता की ओर – इजारेदारियों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। खुले बाज़ार दिन-ब-दिन ज़्यादा हद तक अतीत की एक चीज़ बनते जा रहे हैं, इजारेदारी सिंडीकेट तथा ट्रस्ट उन्हें दिन-ब-दिन अधिक संकुचित करते जा रहे हैं, और कृषि की परिस्थितियों में "केवल" सुधार करने का अर्थ होता है जनता के रहन-सहन के स्तर को ऊंचा उठाना, मज़दूरी बढ़ाना और मुनाफ़े में कमी करना। ऐसे ट्रस्ट सुधारवादियों की कल्पना के अतिरिक्त और कहां होंगे जो उपनिवेशों पर विजय प्राप्त करने के बजाय जन-साधारण की दशा में दिलचस्पी रख सकते हों?

वित्तीय पूंजी को कच्चे माल के केवल उन्हीं स्रोतों में दिलचस्पी नहीं होती जिनका पता लग चुका है, बल्कि उसे निहित स्रोतों में भी दिलचस्पी होती है, क्योंकि वर्तमान प्राविधिक विकास की रफ़्तार बहुत तेज़ है और यह सम्भव है कि जो ज़मीन आज बेकार पड़ी है वह नये तरीक़ों का इस्तेमाल करके (इन नये तरीक़ों का पता लगाने के लिए कोई बड़ा बैंक इंजीनियरों, कृषि विशेषज्ञों आदि का एक विशेष दल संगठित करके वहां भेज सकता है) और बड़े परिमाण में पूंजी लगाकर कल उपजाऊ बना ली जाये। यह बात खनिज भंडारों की खोज करने,

कच्चे माल को तैयार करने, तथा उसका सदुपयोग करने के लिए नये तरीक़ों का पता लगाने, आदि के वारे में भी सच है। यही कारण है कि वित्तीय पूंजी अनिवार्य रूप से अपने आर्थिक क्षेत्र को, बल्कि अपने पूरे क्षेत्र को विस्तृत बनाने की कोशिश करती है। जिस प्रकार अपने "संभावित" (वर्तमान नहीं) मुनाफ़ों को और इजारेदारी के भावी परिणामों को दृष्टिगत रखते हुए ट्रस्ट अपनी पूंजी को अपनी सम्पत्ति के मूल्य के दुगने या तिगुने के बराबर आंकते हैं, उसी प्रकार कच्चे माल के निहित स्रोतों को दृष्टिगत रखते हुए और इस भय से कि अविभाजित इलाक़ों के अंतिम छोटे-छोटे टुकड़ों के लिए, या जिन इलाक़ों का विभाजन हो भी चुका है उनके पुनर्विभाजन के लिए जो भीषण संघर्ष हो रहा है उसमें वह कहीं पीछे न रह जाये, वित्तीय पूंजी की आम कोशिश हर जगह हर प्रकार की यथासंभव ज़्यादा से ज़्यादा ज़मीन पर, हर उपाय से, क़ब्ज़ा कर लेने की होती है।

ब्रिटिश पूंजीपति **अपने** उपनिवेश मिस्र में कपास की खेती को विस्तृत करने की पूरी कोशिश कर रहे हैं (१६०४ में वहां कुल २३,००,००० हेक्टेयर भूमि पर खेती होती थी, जिसमें से ६,००,००० हेक्टेयर पर, अर्थात् चौथाई से अधिक भूमि पर, कपास की खेती होती थी); **अपने** उपनिवेश तुर्किस्तान में रूसी भी यही कर रहे हैं क्योंकि इस प्रकार वे इस दृष्टि से ज़्यादा अच्छी स्थिति में होंगे कि अपने विदेशी प्रतियोगियों को परास्त कर सकें, कच्चे माल के स्रोतों पर इजारेदारी क़ायम कर सकें और कम खर्च पर काम करनेवाला तथा अधिक मुनाफ़ा देनेवाला कपड़ा-उद्योग का एक ऐसा ट्रस्ट क़ायम कर सकें जिसमें कपास के उत्पादन तथा कारखानों में उससे विभिन्न माल तैयार करने से संबंधित **सभी** प्रक्रियाएं मालिकों के एक ही गुट के हाथों में "एकत्रित" तथा संकेंद्रित हो जायें।

पूंजी का निर्यात करने में जिन हितों की पूर्ति को लक्ष्य बनाया

जाता है उनके कारण भी उपनिवेशों की विजय को प्रोत्साहन मिलता है, क्योंकि उपनिवेशों के बाज़ार में प्रतियोगिता को दूर करने, ठेके मिलना निश्चित बनाने, आवश्यक "संबंध" स्थापित करने आदि के लिए इजारेदारी तरीक़ों को इस्तेमाल करना ज़्यादा आसान होता है (और कभी-कभी तो केवल इन्हीं तरीक़ों को इस्तेमाल किया जा सकता है)।

वित्तीय पूंजी की नींव पर जो ग़ैर-आर्थिक ऊपरी ढांचा तैयार होता है, अर्थात् उसकी राजनीति तथा उसकी विचारधारा, उससे भी औपनिवेशिक विजय की चेष्टा को प्रोत्साहन मिलता है। जैसा कि हिल्फ़र्डिंग ने बिल्कुल सही कहा है "वित्तीय पूंजी स्वतंत्रता नहीं बल्कि प्रभुत्व चाहती है"। और एक फ़्रांसीसी पूंजीवादी लेखक ने मानो सेसील रोड्स के ऊपर उद्धृत किये गये विचारों* को विकसित करते हुए तथा उन्हें पूर्त्ति प्रदान करते हुए लिखा है कि आधुनिक औपनिवेशिक नीति के आर्थिक कारणों के साथ सामाजिक कारण भी जोड़ दिये जाने चाहिए: "जीवन की बढ़ती हुई जटिलताओं के कारण और उन कठिनाइयों के कारण जिनका बोझ केवल आम मज़दूरों पर ही नहीं बल्कि मध्यम वर्गों पर भी पड़ता है, पुरानी सभ्यता के सभी देशों में 'अधीरता, झुंझलाहट तथा घृणा बढ़ती जा रही है और ये भावनाएं सार्वजनिक शान्ति के लिए एक ख़तरा बनती जा रही हैं; निश्चित वर्ग माध्यम से जो शक्ति प्रक्षेपित हो रही है उसे विदेशों में किसी काम पर लगा दिया जाना चाहिए ताकि अपने देश में विस्फोट न होने पाये'।"**

---

*देखिये इस पुस्तक के पृष्ठ १०९-११०।—सं०

** Wahl, «*La France aux colonies*» (उपनिवेशों में फ़्रांस—अनु०), Henri Russier द्वारा उद्धृत, «*Le Partage de l'Océanie*» (ओशियाना का विभाजन—अनु०), पेरिस १९०५, पृष्ठ १६५।

चूंकि हम पूंजीवादी साम्राज्यवाद के युग की औपनिवेशिक नीति की चर्चा कर रहे हैं इसलिए यह बता दिया जाना चाहिए कि वित्तीय पूंजी और तदनुरूप वैदेशिक नीति, जो दुनिया के आर्थिक तथा राजनीतिक बंटवारे के लिए बड़ी ताक़तों का संघर्ष मात्र बनकर रह जाती है, राज्यों के परावलम्बन के अनेक **संक्रमणकालीन** रूपों को जन्म देती हैं। देशों के दो मुख्य समूह ही – एक तो वे जिनके पास उपनिवेश हैं और दूसरे उपनिवेश – इस युग की लाक्षणिकताओं का प्रतिनिधित्व नहीं करते, बल्कि परावलम्बी देशों के वे विविध रूप भी इन लाक्षणिकताओं के द्योतक हैं जो कहने को तो राजनीतिक रूप में स्वतंत्र हैं पर वास्तव में वित्तीय तथा कूटनीतिक परावलम्बन के जाल में फंसे हुए हैं। हम परावलम्बन के एक रूप का – अर्द्ध-उपनिवेशों का – उल्लेख कर चुके हैं। एक दूसरे रूप का उदाहरण अर्जेन्टाइना की मिसाल में मिलता है।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद से संबंधित अपनी रचना में शुल्ज़े-गैवर्नित्ज़ ने लिखा है, "दक्षिणी अमरीका और विशेष रूप से अर्जेन्टाइना वित्तीय दृष्टि से लंदन पर इतना निर्भर है कि उसे लगभग एक ब्रिटिश वाणिज्यिक उपनिवेश ही कहा जाना चाहिए।"* ब्योनस-आयर्स में आस्ट्रिया-हंगरी के कौंसल की १६०६ की रिपोर्ट को आधार बनाकर शिल्दर

---

* Schulze-Gaevernitz, «*Britischer Imperialismus und englischer Freihandel zu Beginn des 20-ten Jahrhunderts*» (बीसवीं शताब्दी के आरंभ में ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा अंग्रेज़ी स्वतंत्र व्यापार – अनु०), Leipzig, 1906, पृष्ठ ३१८। Sartorius v. Waltershausen ने «*Das Volkswirtschaftliche System der Kapitalanlage im Auslande*» (विदेशों में पूंजी लगाने की राष्ट्रीय आर्थिक पद्धति – अनु०) में यही बात कही है, Berlin, 1907, पृष्ठ ४६।

ने यह अनुमान लगाया है कि अर्जेन्टाइना में ब्रिटेन की ८,७५,००,००,००० फ़्रांक की पूंजी लगी हुई है। यह कल्पना करना कठिन नहीं है कि इसके फलस्वरूप अर्जेन्टाइना के पूंजीपति वर्ग के साथ, उन क्षेत्रों के साथ जिनका उस देश के पूरे आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन पर नियंत्रण है, ब्रिटेन की वित्तीय पूंजी (और उसकी वफ़ादार मित्र, कूटनीति) कितने दृढ़ संबंध स्थापित कर लेती है।

राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ वित्तीय तथा कूटनीतिक परावलम्बन का इससे कुछ ही भिन्न रूप पुर्तगाल के उदाहरण में देखने को मिलता है। पुर्तगाल एक स्वतंत्र प्रभुसत्तात्मक राज्य है, पर वास्तव में, दो सौ वर्षों से अधिक से, स्पेनी उत्तराधिकार युद्ध (१७०१-१४) के बाद से, वह ब्रिटेन का संरक्षित राज्य रहा है। ग्रेट ब्रिटेन ने पुर्तगाल तथा उसके उपनिवेशों का संरक्षण अपने प्रतिद्वंद्वियों स्पेन तथा फ़्रांस के विरुद्ध लड़ाई में स्वयं अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए किया है। इसके बदले में ग्रेट ब्रिटेन को वाणिज्यिक विशेषाधिकार प्राप्त हुए हैं, चीज़ों का आयात करने के सम्बन्ध में, विशेष रूप से पुर्तगाल तथा पुर्तगाली उपनिवेशों में पूंजी के आयात के संबंध में, दूसरों की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक परिस्थितियां, पुर्तगाल के बंदरगाहों तथा द्वीपों, उसकी तार की लाइनों को इस्तेमाल करने का अधिकार, आदि मिले हैं।* बड़े तथा छोटे राज्यों के बीच इस प्रकार के संबंध हमेशा से क़ायम रहे हैं, परन्तु पूंजीवादी साम्राज्यवाद के युग में वे एक आम पद्धति का रूप धारण कर लेते हैं, वे "दुनिया के बांटों" वाले संबंधों के कुल योग का एक अंग बन जाते हैं, वे विश्व वित्तीय पूंजी की गतिविधियों की श्रृंखला की विभिन्न कड़ियां बन जाते हैं।

* शिल्दर, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, खंड १, पृष्ठ १६०-१६१।

दुनिया के बंटवारे के प्रश्न का विवेचन पूरा करने के लिए हम निम्नलिखित बात का उल्लेख और करेंगे। यह प्रश्न उन्नीसवीं शताब्दी के बिल्कुल अंत और बीसवीं शताब्दी के आरंभ में बिल्कुल खुले तौर पर तथा निश्चित रूप से स्पेनी-अमरीकी युद्ध के बाद अमरीकी साहित्य में उठाया गया और अंग्रेज़-बोएर युद्ध के बाद अंग्रेज़ी साहित्य में। जर्मन साहित्य ने भी, जो "बड़ी ईर्ष्या के साथ" "ब्रिटिश साम्राज्यवाद" को देखता रहा है, सुव्यवस्थित ढंग से इस तथ्य का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। इतना ही नहीं यह प्रश्न फ़्रांसीसी पूंजीवादी साहित्य में भी पूंजीवादी दृष्टिकोण से यथासंभव व्यापकतम तथा सुनिश्चित शब्दों में उठाया गया है। हम द्रियो नामक इतिहासकार के शब्दों को उद्धृत करेंगे जिन्होंने "उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याएं" नामक अपनी रचना के "बड़ी ताक़तें और दुनिया का बंटवारा" शीर्षक अध्याय में लिखा है: "पिछले कुछ वर्षों में, चीन को छोड़कर, भूमंडल के पूरे स्वतंत्र इलाक़े पर यूरोप तथा उत्तरी अमरीका की ताक़तों ने क़ब्ज़ा कर लिया है। इस सवाल को लेकर अनेक संघर्ष तथा प्रभाव के हेर-फेर हो चुके हैं, जो निकट भविष्य में इससे भी भयंकर उथल-पुथल की पूर्व-घोषणा करते हैं। क्योंकि जल्दी करना आवश्यक है। जिन राष्ट्रों ने अभी तक अपने लिए बंदोबस्त नहीं किया है उनके लिए इस बात का खतरा है कि उन्हें अपना हिस्सा कभी भी न मिले और वे भूमंडल के उस शोषण में कभी भी हिस्सा न ले पायें जो अगली" (अर्थात् बीसवीं) "शताब्दी की एक मूलभूत विशेषता होगा। यही कारण है कि इधर कुछ समय से यूरोप तथा अमरीका अपने उपनिवेश बढ़ाने के, उन्नीसवीं शताब्दी के अंत की सबसे उल्लेखनीय विशेषता 'साम्राज्यवाद' के बुख़ार का शिकार हैं।" आगे चलकर इस लेखक ने लिखा, "दुनिया के इस बंटवारे में, भूमंडल के खज़ानों तथा बड़े बाज़ारों की इस बेतहाशा खोज में, इस उन्नीसवीं शताब्दी में स्थापित किये गये साम्राज्यों की आपेक्षिक ताक़त इन साम्राज्यों की

स्थापना करनेवाले राष्ट्रों के यूरोप में प्राप्त पद के अनुपात से बिल्कुल भी मेल नहीं खाती। यूरोप की प्रभुत्वपूर्ण ताक़तें, उसके भाग्य का फ़ैसला करनेवाली ताक़तें, पूरी दुनिया में उसी अनुपात से छायी हुई **नहीं** हैं। और चूंकि औपनिवेशिक ताक़त उस सम्पदा पर जिसे अभी तक आंका नहीं गया है, अपना क़ब्ज़ा जमाने की आशा, यूरोपीय ताक़तों की आपेक्षिक शक्ति पर स्पष्टतः अपना असर डालेगी, इसलिए उपनिवेशों का प्रश्न– यदि आप चाहें तो इसे 'साम्राज्यवाद' कह सकते हैं–जो स्वयं यूरोप की राजनीतिक परिस्थितियों में सुधार कर चुका है, उनमें अधिकाधिक सुधार करता जायेगा।"*

७. साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की एक विशेष अवस्था

ऊपर साम्राज्यवाद के विषय पर जो कुछ बताया गया है उसे अब हमें सार-रूप में प्रस्तुत करने की, उसे समेटने की, कोशिश करनी चाहिए। साम्राज्यवाद का उदय आम तौर पर पूरे पूंजीवाद की मूलभूत लाक्षणिकताओं के विकास तथा उसी क्रम की एक कड़ी के रूप में हुआ। परन्तु अपने विकास की एक निश्चित तथा अत्यंत ऊंची अवस्था में पहुंचकर ही पूंजीवाद पूंजीवादी साम्राज्यवाद का रूप धारण कर सका, ऐसी अवस्था में पहुंचकर जब उसकी कुछेक मूलभूत लाक्षणिकताएं बदलकर अपनी उलटी बनने लगीं, जब एक उच्चतर सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में पूंजीवाद के संक्रमण की विशेषताएं एक निश्चित रूप धारण कर चुकी थीं और हर जगह अपने आपको प्रकट कर चुकी थीं। आर्थिक दृष्टि से, इस प्रक्रिया

---

* J.-E. Driault, «*Problèmes politiques et sociaux*», पेरिस १६०७, पृष्ठ २६६।

की मुख्य बात यह है कि पूंजीवादी इजारेदारी ने खुली प्रतियोगिता का स्थान ले लिया। खुली प्रतियोगिता पूंजीवाद की और बिकाऊ माल के उत्पादन की, आम तौर पर, मूलभूत लाक्षणिकता है; इजारेदारी खुली प्रतियोगिता की बिल्कुल उलट है, परन्तु हम अपनी आंखों से देख चुके हैं कि खुली प्रतियोगिता इजारेदारी में रूपांतरित होती जा रही है, वह बड़े उद्योगों को जन्म दे रही है और छोटे उद्योगों को बाहर ढकेले दे रही है, बड़े पैमाने के उद्योगों के स्थान पर और भी बड़े पैमाने के उद्योग स्थापित कर रही है और उसने उत्पादन तथा पूंजी के संकेंद्रण को इस हद तक पहुंचा दिया है कि उसमें से इजारेदारी—कार्टेल, सिंडीकेट तथा ट्रस्ट—पैदा हुई है और पैदा हो रही है और इनमें उसने लगभग एक दर्जन ऐसे बैंकों की पूंजी को मिला दिया है जो अरबों का हेर-फेर करते रहते हैं। इसके साथ ही इजारेदारियां, जो खुली प्रतियोगिता में से पैदा हुई हैं, इस खुली प्रतियोगिता को खत्म नहीं करतीं, बल्कि उसके ऊपर और उसके साथ क़ायम रहती हैं और इस प्रकार अनेक बहुत तीव्र तथा गहरे विग्रहों, संघर्षों तथा झगड़ों को जन्म देती हैं। पूंजीवाद का एक उच्चतर व्यवस्था में संक्रमण इजारेदारी है।

यदि साम्राज्यवाद की संक्षिप्ततम परिभाषा देना हो तो हम कहेंगे कि पूंजीवाद की इजारेदारी वाली अवस्था का नाम साम्राज्यवाद है। इस प्रकार की परिभाषा सबसे महत्वपूर्ण बातों को समेट लेगी, क्योंकि, एक ओर तो, जब थोड़े-से बहुत बड़े-बड़े इजारेदार बैंकों की पूंजी उद्योगपतियों के इजारेदार संघों की पूंजी के साथ मिल जाती है तो वह वित्तीय पूंजी बन जाती है; और, दूसरी ओर, दुनिया का बंटवारा एक ऐसी औपनिवेशिक नीति से, जो अबाध रूप से उन इलाक़ों में प्रचलित रही है जिन पर किसी पूंजीवादी ताक़त का आधिपत्य नहीं था, दुनिया के इलाक़े पर, जिसका पूरी तरह बंटवारा कर लिया गया है, इजारेदार ढंग के आधिपत्य की औपनिवेशिक नीति में संक्रमण है।

परन्तु बहुत संक्षिप्त परिभाषाएं सुविधाजनक तो होती हैं क्योंकि वे मुख्य बातों को अपने अंदर समेट लेती हैं, फिर भी वे अपर्याप्त होती हैं क्योंकि जिस घटना की परिभाषा करना होता है उसकी बहुत महत्वपूर्ण विशेपताओं को इस परिभाषा से विशेष रूप से निष्कर्ष के रूप में निकालना पड़ता है। और इसलिए इस बात को भुलाये बिना कि आम तौर पर सभी परिभाषाओं के साथ कुछ शर्तें होती हैं तथा उनका महत्व आपेक्षिक ही होता है और यह कि किसी भी परिभाषा में कभी भी किसी घटना के पूर्ण विकासक्रम की सभी कड़ियों को नहीं समेटा जा सकता, हमें साम्राज्यवाद की ऐसी परिभाषा देनी चाहिए जिसमें उसकी निम्नलिखित पांच विशेषताएं आ जायें: (१) उत्पादन तथा पूंजी का संकेंद्रण विकसित होकर इतनी ऊंची अवस्था में पहुंच गया है कि उसने इजारेदारियों को जन्म दिया है जिनकी कि आर्थिक जीवन में एक निर्णायक भूमिका है; (२) बैंकों की पूंजी और उद्योगों की पूंजी मिलकर एक हो गयी हैं, और इस "वित्तीय पूंजी" के आधार पर एक वित्तीय अल्पतंत्र की रचना हुई है; (३) पूंजी के निर्यात ने, जो माल के निर्यात से भिन्न है, असाधारण महत्व धारण कर लिया है; (४) अंतर्राष्ट्रीय इजारेदार पूंजीवादी संघों का निर्माण हुआ है जिन्होंने दुनिया को आपस में बांट लिया है, और (५) सबसे बड़ी पूंजीवादी ताक़तों के बीच पूरी दुनिया का क्षेत्रीय विभाजन पूरा हो गया है। साम्राज्यवाद पूंजीवाद के विकास की वह अवस्था है जिसमें पहुंचकर इजारेदारियों तथा वित्तीय पूंजी का प्रभुत्व दृढ़ रूप से स्थापित हो चुका है, जिस अवस्था में पूंजी का निर्यात अत्यधिक महत्व ग्रहण कर चुका है, जिस अवस्था में अन्तर्राष्ट्रीय ट्रस्टों के बीच दुनिया का बंटवारा आरंभ हो गया है, जिस अवस्था में सबसे बड़ी पूंजीवादी ताक़तों के बीच पृथ्वी के समस्त क्षेत्रों का बंटवारा पूरा हो चुका है।

हम आगे चलकर देखेंगे कि यदि हम केवल मूलभूत, शुद्धतः आर्थिक अवधारणाओं को ही नहीं—ऊपर वाली परिभाषा इन्हीं तक सीमित है—बल्कि पूरे पूंजीवाद के प्रसंग में पूंजीवाद की इस अवस्था विशेष के ऐतिहासिक स्थान को भी, या मज़दूर वर्ग के आंदोलन की दो मुख्य धाराओं के साथ साम्राज्यवाद के संबंध को भी ध्यान में रखें तो साम्राज्यवाद की परिभाषा इससे भिन्न रूप में की जा सकती है और की जानी चाहिए। इस समय जो बात ध्यान देने की है वह यह कि, जैसी कि ऊपर व्याख्या की जा चुकी है, साम्राज्यवाद निःसंदेह पूंजीवाद के विकास की एक विशेष अवस्था का द्योतक है। इस उद्देश्य से कि पाठकों को साम्राज्यवाद के बारे में यथासंभव दृढ़तम आधार पर तैयार किया गया चित्र प्राप्त हो सके, हमने जान-बूझकर यथासंभव ज़्यादा से ज़्यादा हद तक उन **पूंजीवादी** अर्थशास्त्रियों के उद्धरण देने की कोशिश की थी जो पूंजीवादी अर्थतंत्र की इस नवीनतम अवस्था के विषय में विशेषतः अकाट्य तथ्यों को स्वीकार करने पर बाध्य हैं। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए हमने विस्तारपूर्वक ऐसे आंकड़े उद्धृत किये हैं जिनसे पाठकों को यह पता चल सकता है कि बैंकों की पूंजी आदि किस हद तक बढ़ी है, मात्रा का गुण में रूपांतरण, विकसित पूंजीवाद का साम्राज्यवाद में संक्रमण, ठीक-ठीक किस बात में अभिव्यक्त होता है। ज़ाहिर है, यह बताने की तो आवश्यकता नहीं कि प्रकृति तथा समाज की सभी सीमा-रेखाओं के साथ कुछ शर्तें होती हैं और वे बदली जा सकती हैं, और यह कि, उदाहरण के लिए, इस बात पर बहस करना बिल्कुल बेतुकी बात होगी कि साम्राज्यवाद "निश्चित रूप से" किस वर्ष या किस दशाब्दी में जाकर स्थापित हुआ।

परन्तु साम्राज्यवाद की परिभाषा करने के मामले में हमें मुख्यतः का० कौत्स्की के साथ बहस में पड़ना ही पड़ता है, जो तथाकथित दूसरी इंटरनेशनल के युग के—अर्थात् १८८९ से १९१४ तक के पच्चीस वर्षों

के युग के—मुख्य मार्क्सवादी सिद्धांतवेत्ता हैं। साम्राज्यवाद की हमारी परिभाषा में जो मुख्य विचार प्रकट किये गये थे उन पर कौत्स्की ने १९१५ में, बल्कि नवम्बर १९१४ में ही, ज़बर्दस्त हमला किया। इस सिलसिले में उन्होंने कहा कि साम्राज्यवाद को अर्थतंत्र की कोई "मंज़िल" या अवस्था नहीं बल्कि एक नीति समझा जाना चाहिए, एक ऐसी निश्चित नीति जिसे वित्तीय पूंजी "पसंद करती है"। उन्होंने कहा कि "वर्तमान पूंजीवाद" को और साम्राज्यवाद को "एक ही चीज़" न समझनी चाहिए, कि यदि साम्राज्यवाद का अर्थ यह लगाया गया कि "वर्तमान पूंजीवाद की सभी घटनाओं" को—कार्टेल, संरक्षण, महाजनों का प्रभुत्व तथा औपनिवेशिक नीति—साम्राज्यवाद माना जाये तो यह प्रश्न कि साम्राज्यवाद पूंजीवाद के लिए आवश्यक है या नहीं "सरासर एक ही बात को शब्दों के हेर-फेर के साथ बार बार दोहराना होगा," क्योंकि उस दशा में तो "साम्राज्यवाद स्वाभाविक रूप से पूंजीवाद की एक बुनियादी आवश्यकता है", आदि, आदि। कौत्स्की के विचारों को प्रस्तुत करने का सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि साम्राज्यवाद की उनकी परिभाषा को उद्धृत कर दिया जाये, जो कि उन विचारों के सार-तत्व के सर्वथा प्रतिकूल है जिन्हें हमने प्रतिपादित किया है (क्योंकि जर्मन मार्क्सवादियों के पक्ष की ओर से, जो पिछले कई वर्षों से इसी प्रकार के विचारों का समर्थन करते आये हैं, उठायी जानेवाली आपत्तियों के बारे में कौत्स्की बहुत समय से यह जानते हैं कि वे मार्क्सवाद की एक निश्चित धारा की ओर से उठायी जानेवाली आपत्तियां हैं)।

कौत्स्की की परिभाषा इस प्रकार है:

"साम्राज्यवाद अति विकसित औद्योगिक पूंजीवाद की उपज है। वह हर औद्योगिक पूंजीवादी राष्ट्र की इस चेष्टा में निहित है कि वह, इस बात की ओर कोई ध्यान दिये बिना कि उन प्रदेशों में कौन-सी

जातियां बसती हैं, **कृषि के**" (शब्द पर ज़ोर कौत्स्की का) "अधिक से अधिक विस्तृत क्षेत्र पर अपना नियंत्रण स्थापित कर ले या उन पर अपना आधिपत्य जमा ले।"*

यह परिभाषा बिल्कुल दो कौड़ी की है क्योंकि इसमें एकतरफ़ा, अर्थात् मनमाने ढंग से केवल जातियों के प्रश्न को अलग छांट लिया गया है (हालांकि जातियों का प्रश्न स्वयं भी और साम्राज्यवाद के प्रसंग में भी अत्यंत महत्वपूर्ण है), इसमें मनमाने तथा **ग़लत ढंग से** इस प्रश्न का संबंध **केवल** उन देशों की औद्योगिक पूंजी के साथ जोड़ा गया है जो दूसरे राष्ट्रों पर आधिपत्य कर लेते हैं, और उतने ही मनमाने तथा ग़लत ढंग से कृषि प्रदेशों पर आधिपत्य करने के प्रश्न को सबसे आगे लाकर रख दिया गया है।

दूसरे प्रदेशों पर आधिपत्य करने की चेष्टा ही साम्राज्यवाद है— कौत्स्की की परिभाषा के **राजनीतिक** भाग का तात्पर्य यही है। यह बात सही है, पर बहुत अधूरी है, क्योंकि राजनीतिक दृष्टि से साम्राज्यवाद, आम तौर पर, हिंसा तथा प्रतिक्रिया की दिशा में एक चेष्टा होती है। परन्तु इस समय तो हमें इस सवाल के **आर्थिक** पहलू में दिलचस्पी है, जिसे **अपनी** परिभाषा में कौत्स्की ने **स्वयं** शामिल कर दिया है। कौत्स्की की परिभाषा की ग़लतियों को अंधा भी देख सकता है। साम्राज्यवाद की लाक्षणिक विशेषता औद्योगिक **नहीं बल्कि** वित्तीय पूंजी है। यह कोई संयोग की बात नहीं है कि फ़्रांस में पिछली शताब्दी के नवें दशक के बाद से आधिपत्यकारी (औपनिवेशिक) नीति में जो अत्यधिक उग्रता आयी उसका कारण ठीक यही था कि **वित्तीय** पूंजी का विकास असाधारण तीव्र

---

* *«Die Neue Zeit»*, १९१४, २ (खंड ३२), पृष्ठ ९०९, ११ सितम्बर, १९१४; देखिये १९१५, २, पृष्ठ १०७ तथा उसके आगे के पृष्ठ।

गति के साथ हुआ था और औद्योगिक पूंजी कमज़ोर हुई थी। साम्राज्यवाद की लाक्षणिक विशेषता यही है कि वह **न केवल** कृषि प्रदेशों पर बल्कि अत्यंत उद्योगीकृत प्रदेशों पर भी आधिपत्य जमाने की कोशिश करता है (बेलजियम को हड़प लेने की जर्मनी की लालसा; लोरेन को हड़प लेने की फ़्रांस की लालसा), क्योंकि (१) इस बात के कारण कि दुनिया का बंटवारा हो चुका है उन लोगों को, जो **पुनर्विभाजन** की बात सोच रहे हैं, **हर प्रकार के** इलाक़े की तरफ़ हाथ बढ़ाने पर मजबूर होना पड़ता है, और (२) अपना नेतृत्व स्थापित करने की अर्थात् नये इलाक़ों पर विजय प्राप्त करने की कोशिश में अनेक बड़ी ताक़तों की प्रतिद्वंद्विता साम्राज्यवाद की एक बुनियादी विशेषता है, जिसका उद्देश्य स्वयं अपने इलाक़े में वृद्धि करने की अपेक्षा अपने प्रतिद्वंद्वी को कमज़ोर करना और **उसके** नेतृत्व की जड़ें खोखली करना ज़्यादा होता है (बेलजियम का महत्व जर्मनी के लिए विशेष रूप से इस कारण है कि वह उसे इंगलैंड के विरुद्ध अपनी कार्रवाइयों का अड्डा बना सकता है; इंगलैंड जर्मनी के ख़िलाफ़ कार्रवाइयों के लिए एक अड्डे के रूप में बगदाद पर अपना क़ब्ज़ा जमाना चाहता है, इत्यादि)।

कौत्स्की विशेष रूप से—और बार-बार—अंग्रेज़ों का हवाला देते हैं, जिन्होंने, उनके कथनानुसार "साम्राज्यवाद" शब्द का वही शुद्धतः राजनीतिक अर्थ लगाया है जो वह, यानी कौत्स्की, इस शब्द का अर्थ समझते हैं। यदि हम अंग्रेज़ हाबसन की रचना "साम्राज्यवाद" को लें, जो १६०२ में प्रकाशित हुई थी, तो उसमें हम पढ़ते हैं:

"नया साम्राज्यवाद पुराने साम्राज्यवाद से भिन्न है, पहले तो इस दृष्टि से कि उसने एक ही बढ़ते हुए साम्राज्य की महत्वाकांक्षा के बजाय आपस में प्रतियोगिता करनेवाले साम्राज्यों के सिद्धांत तथा व्यवहार को अपना लिया है, जिनमें से प्रत्येक साम्राज्य राजनीतिक क्षेत्र-वृद्धि तथा

वाणिज्यिक लाभ की एक जैसी लालसा द्वारा प्रेरित है; दूसरे, इस दृष्टि से कि वित्तीय अर्थात् पूंजी लगाने के हितों ने वाणिज्यिक हितों की तुलना में प्रधानता प्राप्त कर ली है।"*

हम देखते हैं कि कौत्स्की ने आम तौर पर सभी अंग्रेज़ों का जो हवाला दिया है वह बिल्कुल ग़लत है (अगर उनका अभिप्राय घटिया अंग्रेज़ साम्राज्यवादियों या साम्राज्यवाद के खुले समर्थकों से था तो बात दूसरी है)। हम देखते हैं कि कौत्स्की दावा तो यह करते हैं कि वह पहले की ही तरह मार्क्सवाद के समर्थक हैं, पर वास्तव में वह **सामाजिक-उदारवादी** हावसन से भी एक क़दम पीछे हट गये हैं, जिसने आधुनिक साम्राज्यवाद की दो "इतिहास की दृष्टि से ठोस" (कौत्स्की की परिभाषा ऐतिहासिक सत्य का उपहास है!) विशेषताओं पर **ज्यादा सही** ढंग से विचार किया है: (१) **अनेक** साम्राज्यवादों के बीच प्रतियोगिता, और (२) व्यापारी की तुलना में महाजन की प्रधानता। यदि मुख्यतः सवाल औद्योगिक देशों द्वारा कृषिप्रधान देशों पर आधिपत्य करने का होता, तो व्यापारी की भूमिका सबसे प्रमुख हो जाती है।

कौत्स्की की परिभाषा केवल ग़लत और अमार्क्सवादी ही नहीं है। वह एक ऐसी पूरी विचार-पद्धति के आधार का काम करती है जो आद्योपांत मार्क्सवादी सिद्धांत तथा मार्क्सवादी व्यवहार से संबंध-विच्छेद की द्योतक है। इसका उल्लेख हम आगे चलकर करेंगे। कौत्स्की ने शब्दों के बारे में जो यह बहस छेड़ी है कि पूंजीवाद की नवीनतम अवस्था को "साम्राज्यवाद" कहा जाना चाहिए या "वित्तीय पूंजी वाली अवस्था", वह बिल्कुल फ़ालतू बहस है। जो जी म आये कह लीजिये, उससे कोई अंतर नहीं पड़ता। असल बात यह है कि कौत्स्की साम्राज्यवाद की राजनीति को उसकी अर्थ-

---

* Hobson, «*Imperialism*», लंदन, १६०२, पृष्ठ ३२४।

व्यवस्था से अलग कर लेते हैं, वह नये इलाक़ों पर आधिपत्य को एक ऐसी नीति बताते हैं जिसे वित्तीय पूंजी "पसंद करती है", और उसके मुक़ावले पर एक दूसरी पूंजीवादी नीति लाकर खड़ी कर देते हैं जिसके बारे में उनका कहना यह है कि वह वित्तीय पूंजी के इसी आधार पर संभव हो सकती है। तो इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि अर्थ-व्यवस्था के क्षेत्र में इजारेदारियां राजनीति के क्षेत्र में ग़ैर-इजारेदारी, अहिंसात्मक तथा ग़ैर-आधिपत्यकारी तरीक़ों के साथ मेल खा सकती हैं। तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दुनिया का क्षेत्रीय विभाजन, जो वित्तीय पूंजी के युग में ही पूरा किया गया था, और जो सबसे बड़े पूंजीवादी राज्यों के बीच प्रतिद्वंद्विता के वर्तमान विशिष्ट रूपों का आधार है, ग़ैर-साम्राज्यवादी नीति के साथ मेल खा सकता है। इसका परिणाम यह है कि पूंजीवाद की नवीनतम अवस्था के गूढ़तम अंतर्विरोधों की गहराई की क़लई खोलने के बजाय उन्हें अनदेखा कर दिया जाये तथा उनकी तीव्रता को कम कर दिया जाये, इसका परिणाम है मार्क्सवाद के बजाय पूंजीवादी सुधारवाद।

कौत्स्की साम्राज्यवाद तथा दूसरों के इलाक़े पर आधिपत्य जमाने की नीति के जर्मन समर्थक कूनोव के साथ बहस में उलझ जाते हैं, जो बहुत ही भोंडे ढंग से तथा बेहयाई के साथ यह दलील देते हैं कि वर्तमान पूंजीवाद ही साम्राज्यवाद है; पूंजीवाद का विकास अनिवार्य तथा प्रगतिशील है; इसलिए साम्राज्यवाद प्रगतिशील है; इसलिए हमें उसके आगे नाक रगड़ना चाहिए और उसका गुणगान करना चाहिए! यह कुछ-कुछ वैसा ही चित्र है जैसा कि १८९४-९५ में नारोदनिकों ने रूसी मार्क्सवादियों का खींचा था। उन्होंने दलील दी: यदि मार्क्सवादियों का यह विश्वास है कि पूंजीवाद रूस में अनिवार्य है, कि वह प्रगतिशील है तो उन्हें एक शराबख़ाना खोल लेना चाहिए और पूंजीवाद के विचार लोगों के दिमाग़ में बिठाना शुरू कर देना चाहिए। कूनोव को कौत्स्की का उत्तर इस

प्रकार है: साम्राज्यवाद आजकल का पूंजीवाद नहीं है; वह आजकल के पूंजीवाद की नीति का केवल एक रूप है। हम इस नीति के ख़िलाफ़, साम्राज्यवाद, आधिपत्यों आदि के ख़िलाफ़ लड़ सकते हैं और हमें लड़ना चाहिए।

यह उत्तर देखने में बिल्कुल उचित प्रतीत होता है परंतु यह साम्राज्यवाद के साथ मेल कर लेने की ज़्यादा गूढ़ तथा ज़्यादा छुपी हुई (और इसलिए ज़्यादा ख़तरनाक) पैरवी है, क्योंकि ट्रस्टों तथा बैंकों की नीति के ख़िलाफ़ ऐसी "लड़ाई" जिससे ट्रस्टों तथा बैंकों की अर्थपद्धति के आधार पर कोई प्रभाव न पड़ता हो, पूंजीवादी सुधारवाद तथा शांतिवाद के अलावा, सदिच्छाओं की उदारतापूर्ण तथा निष्कपट अभिव्यक्ति के अलावा और कुछ नहीं है। मौजूदा विरोधों की गहराई का पता लगाने के बजाय उनसे कतराना, उनमें से सबसे महत्वपूर्ण विरोधों को भूल जाना — यह है कौत्स्की का सिद्धांत, जिसमें और मार्क्सवाद में कोई समानता नहीं है। स्वाभाविक रूप से, इस प्रकार का "सिद्धांत" केवल कूनोव जैसे लोगों के साथ एकता की पैरवी करने का काम दे सकता है।

कौत्स्की लिखते हैं, "शुद्धतः आर्थिक दृष्टि से, यह असंभव नहीं है कि पूंजीवाद एक और मंज़िल से होकर गुज़रे, कार्टेलों की नीति को बढ़ाकर वैदेशिक नीति के क्षेत्र में भी लागू करने की मंज़िल से, अति-साम्राज्यवाद की मंज़िल से"* अर्थात् महा-साम्राज्यवाद की मंज़िल से, उस मंज़िल से जिसमें सारी दुनिया के साम्राज्यवादों के बीच संघर्ष न होकर उनका एक संघ बन जायेगा, वह एक ऐसी मंज़िल होगी जिसमें पूंजीवाद के अंतर्गत युद्ध बंद हो जायेंगे, वह "अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर

---

* *«Die Neue Zeit»* १९१४, २ (खंड ३२), पृष्ठ ९२१, ११ सितम्बर, १९१४। देखिये १९१५, २, पृष्ठ १०७ तथा उसके आगे के पृष्ठ।

एकबद्ध वित्तीय पूंजी द्वारा दुनिया के संयुक्त शोषण"* की मंज़िल होगी।

हमें इस "अति-साम्राज्यवाद के सिद्धांत" पर आगे चलकर विचार करना होगा ताकि विस्तारपूर्वक यह बताया जा सके कि वह किस प्रकार निश्चित रूप से तथा पूर्णतः मार्क्सवाद से भिन्न है। इस समय, प्रस्तुत रचना की आम योजना के अनुसार, हम इस प्रश्न से संबंधित सही-सही आर्थिक तथ्य-सामग्री की छानबीन करेंगे। "शुद्धतः आर्थिक दृष्टिकोण से" क्या "अति-साम्राज्यवाद" संभव है, या वह अति-बकवास है?

यदि शुद्धतः आर्थिक दृष्टिकोण से अभिप्राय "शुद्ध" अमूर्त विचार है तो इस संबंध में जो कुछ भी कहा जा सकता है वह केवल निम्नलिखित प्रस्थापना तक ही सीमित रह जाता है: विकास इजारेदारियों की ओर बढ़ रहा है, इसलिए, प्रवृत्ति सारी दुनिया की एक ही इजारेदारी की ओर है, अर्थात् सारी दुनिया के एक ही ट्रस्ट की ओर। यह अकाट्य बात है, परन्तु साथ ही यह उतनी ही पूर्णतः निरर्थक भी है जितना कि यह कहना कि "विकास" प्रयोगशालाओं में खाद्य-सामग्री के उत्पादन की दिशा में "बढ़ रहा है"। इस दृष्टि से अति-साम्राज्यवाद का "सिद्धान्त" "अति कृषि के सिद्धांत" से कम बेतुका नहीं है।

परन्तु यदि हम इतिहास की दृष्टि से एक निश्चित युग के रूप में, वित्तीय पूंजी के युग की "शुद्धतः आर्थिक" परिस्थितियों पर विचार करें जो बीसवीं शताब्दी के आरंभ में शुरू हुआ था, तो "अति-साम्राज्यवाद" की निर्जीव कल्पनाओं का (जो केवल एक अत्यंत प्रतिक्रियावादी उद्देश्य को पूरा करती हैं: **मौजूदा** विग्रहों की गहराई की तरफ़ से ध्यान हटाने

---

* *«Die Neue Zeit»* १९१५, १, पृष्ठ १४४, ३० अप्रैल, १९१५।

के उद्देश्य को) सबसे अच्छा उत्तर यही दिया जा सकता है कि उनकी तुलना वर्तमान विश्व अर्थतंत्र की ठोस आर्थिक वास्तविकताओं के साथ कर ली जाये। अति-साम्राज्यवाद के बारे में कौत्स्की की सर्वथा निरर्थक बातें और बातों के अतिरिक्त उस बहुत ही ग़लत विचार को प्रोत्साहन देती हैं जिससे केवल साम्राज्यवाद के पक्षधरों को बल मिलता है, अर्थात् यह विचार कि वित्तीय पूंजी का शासन विश्व अर्थतंत्र में निहित असमानता तथा विरोधों को **कम करता** है, जबकि वास्तव में वह उन्हें **बढ़ा देता** है।

आर० काल्वेर* ने अपनी "विश्व अर्थतंत्र की भूमिका" नामक छोटी-सी पुस्तक में उस मुख्य, शुद्धतः आर्थिक तथ्य-सामग्री का सारांश प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, जिससे हमें उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों के संगम पर विश्व अर्थतंत्र के आंतरिक संबंधों का ठोस चित्र प्राप्त हो सकता है। उन्होंने दुनिया को इस प्रकार पांच "मुख्य आर्थिक क्षेत्रों" में विभाजित किया है: (१) मध्य यूरोप (रूस तथा ग्रेट ब्रिटेन को छोड़कर सारा यूरोप); (२) ग्रेट ब्रिटेन; (३) रूस; (४) पूर्वी एशिया; (५) अमरीका; उन्होंने उपनिवेशों को उन राज्यों के "क्षेत्रों" में शामिल किया है जिनका उन पर आधिपत्य है और कुछ देशों को जिन्हें क्षेत्रों के हिसाब से बांटा नहीं गया है, जैसे एशिया में फ़ारस, अफ़ग़ानिस्तान तथा अरब, अफ़्रीका में मोरोक्को तथा अबीसीनिया, आदि, उन्होंने "छोड़ दिया" है।

इन प्रदेशों के बारे में उन्होंने जो आर्थिक तथ्य-सामग्री उद्धृत की है, उसका सारांश यह है:

---

* R. Calwer, *«Einführung in die Weltwirtschaft»*, बर्लिन, १९०६।

मुख्य आर्थिक क्षेत्र	क्षेत्रफल	आबादी
	लाख वर्ग किलोमीटरों में	लाखों में
१) मध्य यूरोपीय	२७६ (२३६)*	३,८८० (१,४६०)
२) ब्रिटिश	२८६ (२८६)*	३,६८० (३,५५०)
३) रूसी	२२०	१,३१०
४) पूर्वी एशियाई	१२०	३,८६०
५) अमरीकी	३००	१,४८०

हम देखते हैं कि तीन क्षेत्र ऐसे हैं जहां पूंजीवाद बहुत विकसित है (यातायात, व्यापार तथा उद्योग के साधनों के विकास का उच्च स्तर): मध्य यूरोपीय, ब्रिटिश तथा अमरीकी क्षेत्र। इन्हीं में वे तीन राज्य हैं जिनका दुनिया पर प्रभुत्व क़ायम है: जर्मनी, ग्रेट ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमरीका। इन देशों के बीच साम्राज्यवादी प्रतिद्वंद्विता तथा संघर्ष ने अत्यंत उग्र रूप धारण कर लिया है क्योंकि जर्मनी का क्षेत्रफल बहुत ही नगण्य और उसके उपनिवेशों की संख्या बहुत थोड़ी है; "मध्य यूरोप" की रचना अभी तक भविष्य की बात है, भीषण संघर्ष

*कोष्ठकों के अंदर वाले आंकड़े उपनिवेशों के क्षेत्रफल तथा उनकी जनसंख्या के सूचक हैं।

यातायात		व्यापार	उद्योग		
			उत्पादन		
रेलें (हज़ार किलोमीटरों में)	व्यापारिक जहाज़ (लाख टनों में)	आयात और निर्यात (अरब मार्कों में)	कोयले का (लाख टनों में)	कच्चे लोहे का (लाख टनों में)	सूत कातने के तकुओं की संख्या (लाखों में)
२०४	८०	४१	२,५१०	१५०	२६०
१४०	११०	२५	२,४६०	६०	५१०
६३	१०	३	१६०	३०	७०
८	१०	२	८०	०.२	२०
३७६	६०	१४	२,४५०	१४०	१६०

के बीच उसका जन्म हो रहा है। इस समय पूरे यूरोप की लाक्षणिक विशेषता राजनीतिक विच्छिन्नता है। दूसरी ओर, ब्रिटिश तथा अमरीकी क्षेत्रों में राजनीतिक संकेंद्रण बहुत विकसित है परन्तु एक के अति विस्तृत उपनिवेशों तथा दूसरे के नगण्य उपनिवेशों के बीच बहुत बड़ा अंतर है। परन्तु उपनिवेशों में पूंजीवाद का विकास अभी आरंभ ही हो रहा है। दक्षिणी अमरीका के लिए संघर्ष अधिकाधिक उग्र रूप धारण करता जा रहा है।

दो क्षेत्र ऐसे हैं जहां पूंजीवाद का विकास बहुत कम हुआ है: रूस तथा पूर्वी एशिया। रूस में आबादी बहुत कम घनी है और पूर्वी एशिया में बहुत ही अधिक घनी है; रूस में राजनीतिक संकेंद्रण का

स्तर बहुत ऊंचा है और पूर्वी एशिया में है ही नहीं। चीन का विभाजन अभी आरंभ ही हो रहा है और उस पर क़ब्ज़ा जमाने के लिए जापान, संयुक्त राज्य अमरीका आदि का पारस्परिक संघर्ष निरंतर उग्रतर रूप धारण करता जा रहा है।

इस वास्तविकता की तुलना – आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों की अत्यधिक विषमता, विभिन्न देशों के विकास की रफ़्तार में अत्यधिक अंतर, आदि, और साम्राज्यवादी राज्यों के बीच भीषण संघर्ष – "शांतिपूर्ण" अति-साम्राज्यवाद के बारे में कौत्स्की की मूर्खतापूर्ण कपोल-कल्पना के साथ कीजिये। क्या यह एक भयभीत कूपमंडूक की क्रूर वास्तविकता से छुपने की प्रतिक्रियावादी कोशिश नहीं है? जिन अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेलों को कौत्स्की "अति-साम्राज्यवाद" के अंकुर समझते हैं (उसी प्रकार जैसे हम प्रयोगशाला में गोलियों के उत्पादन को अति-कृषि का अंकुर कह "सकते" हैं), क्या वे दुनिया के विभाजन **तथा पुनर्विभाजन** का, शांतिपूर्ण विभाजन से अशान्तिपूर्ण विभाजन में और अशांतिपूर्ण विभाजन से शांतिपूर्ण विभाजन में संक्रमण का उदाहरण नहीं हैं? क्या अमरीकी तथा दूसरी वित्तीय पूंजी, जिसने, उदाहरण के लिए, अन्तर्राष्ट्रीय रेल सिंडीकेट में, या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक जहाज़रानी ट्रस्ट में जर्मनी को भी शरीक करके सारी दुनिया को शांतिपूर्वक बांट लिया था, इस समय शक्तियों के एक नये संबंध के आधार पर, जिसे सर्वथा **अ**-शांतिपूर्ण तरीक़ों से बदला जा रहा है, दुनिया का **पुनर्विभाजन करने में व्यस्त नहीं है?**

वित्तीय पूंजी तथा ट्रस्ट विश्व अर्थतंत्र के विभिन्न भागों के विकास की गति के अंतर को कम नहीं करते, बल्कि बढ़ा देते हैं। एक बार शक्तियों का पारस्परिक संबंध बदल जाने पर **पूंजीवाद के अंतर्गत** इन विरोधों को हल करने के लिए **बल-प्रयोग** के अतिरिक्त और क्या उपाय हो सकता

है? रेल-संबंधी आंकड़ों* में विश्व अर्थतंत्र में पूंजीवाद तथा वित्तीय पूंजी के विकास की अलग-अलग रफ़्तारों के बारे में बहुत ही सही-सही तथ्य-सामग्री मिलती है। साम्राज्यवादी विकास के अंतिम दशकों में रेलों की कुल लम्बाई में इस प्रकार परिवर्तन हुए:

रेलें

(हज़ार किलोमीटरों में)

	१८६०		१६१३		बढ़ती	
यूरोप	२२४		३४६		+१२२	
सं० रा० अमरीका	२६८		४११		+१४३	
सब उपनिवेश	८२	१२५	२१०	३४७	+१२८	+२२२
एशिया और अमरीका के स्वतंत्र और अर्द्ध-स्वतंत्र राज्य	४३		१३७		+ ६४	
कुल	६१७		१,१०४			

इस प्रकार हम देखते हैं कि रेलों का विकास अधिक तीव्र गति से उपनिवेशों और एशिया तथा अमरीका के स्वतंत्र (तथा अर्ध-स्वतंत्र) राज्यों में हुआ है। जैसा कि हम जानते हैं यहां चार या पांच सबसे बड़े पूंजीवादी राज्यों की वित्तीय पूंजी का एकच्छत्र राज्य है। उपनिवेशों में और एशिया तथा अमरीका के अन्य देशों में दो लाख किलोमीटर

---

* *Stat. Jahrbuch für das deutsche Reich, 1915; Archiv für Eisenbahnwesen, 1892* (जर्मन साम्राज्य के लिए आंकड़ों का वार्षिक वृत्तांत; १६१५; रेलमार्ग पुरालेखशाला—अनु०)। १८६० में विभिन्न देशों के उपनिवेशों में रेलों के वितरण से संबंधित ब्योरे की बातों का मोटा-मोटा अनुमान ही लगाना पड़ा है।

लम्बी नयी रेल की लाइनें ४०,००,००,००,००० मार्क से अधिक पूंजी की द्योतक हैं, यह नयी लगायी गयी पूंजी है जो विशेषत: लाभप्रद शर्तों पर लगायी गयी है और इस बात की विशेष गारंटी ले लेने के बाद लगायी गयी है कि उस पर अच्छा मुनाफ़ा होगा और इस्पात के कारख़ानों को लाभप्रद आर्डर दिये जायेंगे, आदि, आदि।

पूंजीवाद का विकास सबसे अधिक तेज़ी के साथ उपनिवेशों में तथा समुद्र-पार के देशों में हो रहा है। समुद्र-पार के देशों में **नयी** साम्राज्यवादी ताक़तें उभर रही हैं (जैसे जापान)। दुनिया की साम्राज्यवादी प्रणालियों के बीच संघर्ष उग्रतर होता जा रहा है। वित्तीय पूंजी उपनिवेशों तथा समुद्र-पार के देशों के सबसे अधिक लाभप्रद कारोबारों से जो चौथ वसूल करती है वह बढ़ती जा रही है। इस "लूट के माल" के बंटवारे में एक असाधारण रूप से बड़ा हिस्सा उन देशों को मिलता है जो उत्पादक शक्तियों के विकास की गति की दृष्टि से हमेशा सबसे आगे नहीं होते। सबसे बड़े देशों में, उनके उपनिवेशों सहित रेलवे लाइनों की कुल लम्बाई इस प्रकार थी:

(हज़ार किलोमीटरों में)

	१८९०	१९१३	बढ़ती
सं० रा० अमरीका	२६८	४१३	+१४५
ब्रिटिश साम्राज्य	१०७	२०८	+१०१
रूस	३२	७८	+ ४६
जर्मनी	४३	६८	+ २५
फ़्रांस	४१	६३	+ २२
पांच देशों का कुल योग. . .	४९१	८३०	+३३९

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस समय कुल जितनी रेलवे लाइनें हैं उनका लगभग ८० प्रतिशत भाग पांच सबसे बड़ी ताक़तों के हाथों में केंद्रित है। परन्तु इन रेलों के **स्वामित्व** का संकेंद्रण, वित्तीय पूंजी का संकेंद्रण, इससे भी कहीं ज़्यादा है, क्योंकि, उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ तथा फ़्रांसीसी करोड़पतियों के पास अमरीकी, रूसी तथा अन्य रेलों के बहुत बड़ी-बड़ी रक़मों के शेयर तथा बांड हैं।

अपने उपनिवेशों की बदौलत ग्रेट ब्रिटेन ने "अपनी" रेलों की लम्बाई में १,००,००० किलोमीटर की वृद्धि कर ली है, अर्थात् जर्मनी की तुलना में चार गुनी। फिर भी यह बात सर्वविदित है कि जर्मनी में उत्पादक शक्तियों का विकास, विशेष रूप से कोयले तथा लोहे के उद्योगों का विकास, इस काल में—फ़्रांस तथा रूस की बात तो जाने दीजिये—इंगलैंड की तुलना में भी बहुत ही ज़्यादा तीव्र गति से हुआ है। १८९२ में कच्चे लोहे का उत्पादन जर्मनी में ४९,००,००० टन और ग्रेट ब्रिटेन में ६८,००,००० टन था; १९१२ में जर्मनी का उत्पादन १,७६,००,००० टन हो गया और ब्रिटेन का ९०,००,००० टन। इस प्रकार इस मामले में जर्मनी की श्रेष्ठता इंगलैंड के मुक़ाबले में कहीं अधिक थी!* सवाल यह है कि एक ओर तो उत्पादक शक्तियों के विकास तथा पूंजी के संचय और दूसरी ओर उपनिवेशों के विभाजन तथा वित्तीय पूंजी के लिए "प्रभाव क्षेत्रों" के बीच जो विषमता थी उसे दूर करने का **पूंजीवाद के अंतर्गत** युद्ध के अतिरिक्त और क्या उपाय हो सकता था?

---

* Edgar Crammond, «*The Economic Relations of the British and German Empires*» (ब्रिटिश तथा जर्मन साम्राज्यों के आर्थिक संबंध) शीर्षक लेख भी देखिये, जुलाई १९१४, पृष्ठ ७७७ तथा उसके आगे के पृष्ठ।

८. पूंजीवाद का परजीवी स्वभाव तथा उसका ह्रास

हमें अब साम्राज्यवाद के एक दूसरे बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू पर विचार करना है जिसको आम तौर पर इस विषय से संबंधित विवेचनाओं में अपर्याप्त महत्व दिया जाता है। मार्क्सवादी हिल्फ़र्डिंग की एक कमज़ोरी यह है कि वह ग़ैर-मार्क्सवादी हाबसन की तुलना में एक क़दम पीछे की ओर चले जाते हैं। हमारा संकेत साम्राज्यवाद के उस परजीवी स्वभाव की ओर है जो उसकी एक लाक्षणिकता है।

जैसा कि हम देख चुके हैं साम्राज्यवाद की सबसे गहरी नींव इजारेदारी है। यह पूंजीवादी इजारेदारी है, अर्थात् ऐसी इजारेदारी जो पूंजीवाद में से उत्पन्न हुई है और पूंजीवाद, माल के उत्पादन तथा प्रतियोगिता के सामान्य वातावरण में रहती है और इस सामान्य वातावरण के साथ उसका स्थायी तथा अमिट विरोध रहता है। फिर भी हर इजारेदारी की तरह यह भी अनिवार्य रूप में गतिरोध तथा ह्रास की प्रवृत्ति को जन्म देती है। चूंकि इजारेदारी क़ीमतें स्थापित हो जाती हैं, अस्थायी रूप से ही सही, इसलिए कुछ हद तक प्राविधिक उन्नति की, और फलस्वरूप हर उन्नति की प्रेरक शक्ति खत्म हो जाती है और उसी हद तक प्राविधिक उन्नति की रफ़्तार को जान-बूझकर धीमा कर देने की **आर्थिक** संभावना उत्पन्न हो जाती है। उदाहरण के लिए अमरीका में ओवेन्स नामक किसी व्यक्ति ने एक ऐसी मशीन का आविष्कार किया जिससे बोतलों के उत्पादन में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आ गया। जर्मनी के बोतलें बनानेवाले कार्टेल ने ओवेन्स का पेटेन्ट खरीद लिया परन्तु उसे ताक़ में रख दिया, उसे कभी इस्तेमाल नहीं किया। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि पूंजीवाद के अंतर्गत इजारेदारी विश्व के बाज़ार से प्रतियोगिता को कभी भी पूरी तरह और बहुत दीर्घकाल के लिए खत्म नहीं कर सकती (और, प्रसंगवश हम

बता दें, कि यह भी एक कारण है कि अति-साम्राज्यवाद का सिद्धांत इतना बेतुका क्यों है)। इसमें तो संदेह नहीं कि प्राविधिक सुधारों का प्रयोग करने से उत्पादन की लागत में होनेवाली कमी और मुनाफ़े में वृद्धि परिवर्तन की दिशा में क्रियाशील होती है। परंतु गतिरोध तथा ह्रास की **प्रवृत्ति**, जो इजारेदारी की लाक्षणिकता है, काम करती रहती है, और उद्योगों की कुछ शाखाओं में, कुछ देशों में, कुछ समय के लिए उसका पलड़ा भारी हो जाता है।

अत्यंत विस्तृत, समृद्ध या सुस्थित उपनिवेशों पर इजारेदार स्वामित्व भी इसी दिशा में क्रियाशील रहता है।

इसके अतिरिक्त, साम्राज्यवाद कुछ थोड़े-से देशों में द्रव्य पूंजी का विपुल संचय होता है; जैसा कि हम देख चुके हैं यह संचय प्रतिभूतियों के रूप में १००-१५० अरब फ़्रांक के बराबर था। इसलिए एक वर्ग का, बल्कि कहना चाहिए, सूदख़ोरों के एक सामाजिक स्तर का असाधारण रूप से विकास होता है, अर्थात् ऐसे लोगों का जो "कूपन काटकर" अपनी जीविका कमाते हैं, जो किसी भी कारोबार में कोई हिस्सा नहीं लेते हैं, जिनका पेशा ही हरामख़ोरी होता है। पूंजी का निर्यात जो साम्राज्यवाद का एक सबसे बुनियादी आर्थिक आधार है, सूदख़ोरों को उत्पादन-व्यवस्था से और भी पूरी तरह अलग कर देता है और पूरे देश पर परजीवी होने की मुहर लगा देता है जो समुद्र-पार के कई देशों तथा उपनिवेशों के श्रम का शोषण करके जीवित रहता है।

हाबसन लिखते हैं, "१८९३ में विदेशों में जो ब्रिटिश पूंजी लगी हुई थी वह इंगलैंड की कुल सम्पदा के लगभग १५ प्रतिशत के बराबर थी।"* हम पाठकों को याद दिलायेंगे कि १९१५ तक यह पूंजी लगभग ढाई गुनी बढ़ गयी थी। आगे चलकर हाबसन कहते हैं,

---

* हाबसन, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ ५९, ६०।

"आक्रामक साम्राज्यवाद, जो टैक्स अदा करनेवालों को इतना महंगा पड़ता है, जो कारखानेवालों तथा व्यापारियों के लिए इतने कम महत्व का है,... पूंजी लगानेवालों (अंग्रेज़ी में 'इन्वेस्टर') के लिए बहुत मुनाफ़े का स्रोत है... ग्रेट ब्रिटेन को अपने पूरे वैदेशिक तथा औपनिवेशिक व्यापार से आयात तथा निर्यात से कमीशन के रूप में प्रति वर्ष जो आय होती है उसके बारे में सर आर० गिफ़ेन ने यह अनुमान लगाया है कि १८६६ में यह आय, ८०,००,००,००० पौंड के कुल लेन-देन पर २.५ प्रतिशत के हिसाब से, १,८०,००,००० पौंड (लगभग १७,००,००,००० रूबल) थी।" यह रक़म बहुत बड़ी तो है पर उससे ग्रेट ब्रिटेन के आक्रामक साम्राज्यवाद की पूरी व्याख्या नहीं हो सकती। उसकी व्याख्या तो "लगायी गयी" पूंजी से होनेवाली ६-१० करोड़ पौंड की आय से, सूदखोरों की आय से ही हो सकती है।

सूदखोरों की आय संसार के सबसे बड़े "व्यापारी" देश के वैदेशिक व्यापार से होनेवाली कुल आय से **पांच गुनी** अधिक है! यह है साम्राज्यवाद तथा साम्राज्यवाद के परजीवी स्वभाव का निचोड़।

यही कारण है कि साम्राज्यवाद विषयक आर्थिक साहित्य में "सूदख़ोर राज्य" (*Rentnerstaat*) या महाजन राज्य आदि शब्दों का प्रयोग आम तौर पर होने लगा है। दुनिया मुट्ठी-भर महाजन राज्यों तथा बहुत बड़ी संख्या में ऋणी राज्यों में बंट गयी है। शुल्ज़े-गैवर्नित्ज़ कहते हैं, "विदेशों में जो पूंजी लगायी जाती है उसकी सूची में सबसे पहला स्थान उस पूंजी का है जो राजनीतिक रूप से निर्भर अथवा मित्र देशों में लगायी जाती है: ग्रेट ब्रिटेन मिस्र, जापान, चीन तथा दक्षिणी अमरीका को ऋण देता है। इस प्रसंग में उसकी नौ-सेना आवश्यकता पड़ने पर क़ुर्क़-अमीन का काम करती है। ग्रेट ब्रिटेन की राजनीतिक

ताक़त उसे अपने क़र्ज़दारों के रोष से सुरक्षित रखती है।"* सरटोरियस वान वाल्टर्सगाज़ेन ने अपनी पुस्तक "विदेशों में पूंजी लगाने की राष्ट्रीय आर्थिक पद्धति" में एक "सूदखोर राज्य" की सबसे अच्छी मिसाल के रूप में हालैंड का उल्लेख किया है और यह बताया है कि ग्रेट ब्रिटेन तथा फ़्रांस भी अब वैसे ही बनते जा रहे हैं।** शिल्दर का यह मत है कि पांच औद्योगिक राज्य "निश्चित रूप से बहुत ही प्रमुख ऋण देनेवाले देश" बन गये हैं: ग्रेट ब्रिटेन, फ़्रांस, जर्मनी, बेलजियम तथा स्विट्ज़रलैंड। उन्होंने इस सूची में हालैंड को केवल इसलिए शामिल नहीं किया है कि वह "औद्योगिक दृष्टि से बहुत कम विकसित"*** है। संयुक्त राज्य अमरीका का ऋण केवल अमरीकी देशों पर है।

शुल्ज़े-गैवर्नित्ज़ कहते हैं, "ग्रेट ब्रिटेन धीरे-धीरे एक औद्योगिक राज्य से एक ऋण देनेवाला राज्य बनता जा रहा है। औद्योगिक उत्पादन तथा कारखानों के तैयार माल के निर्यात की कुल मात्रा में वृद्धि के बावजूद सूद तथा डिवीडेंड से, प्रतिभूतियां जारी करने से, कमीशन तथा सट्टेबाज़ी से होनेवाली आय का सापेक्ष महत्व पूरे राष्ट्रीय अर्थतंत्र में बढ़ता जा रहा है। मेरी राय में यही बात है जो साम्राज्यवाद की उन्नति का आर्थिक आधार है। क़र्ज़दार के साथ क़र्ज़ देनेवाले का संबंध ख़रीदार के साथ माल बेचनेवाले के संबंध की अपेक्षा अधिक दृढ़ होता है।"**** जर्मनी के बारे में अ० लैंसबर्ग ने, जो बर्लिन की

---

* Schulze-Gaevernitz, *«Britischer Imperialismus»*, पृष्ठ ३२० तथा उसके बाद के पृष्ठ।

** Sart. von Waltershausen, *«Das volkswirtschaftliche System, etc.»*, बर्लिन, १९०७, खण्ड ४।

*** शिल्दर, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ ३९३।

**** Schulze-Gaevernitz, उपरोक्त पुस्तक, पृष्ठ १२२।

«Die Bank» नामक पत्रिका के प्रकाशक थे, १९११ में अपने "जर्मनी—एक सूदखोर राज्य" शीर्षक लेख में लिखा: "फ़्रांस के लोगों में सूदखोर बनने की जो लालसा पायी जाती है उसे जर्मनी के लोग हमेशा बड़े तिरस्कार की दृष्टि से देखा करते हैं। परन्तु वे इस बात को भूल जाते हैं कि जहां तक पूंजीपति वर्ग का सवाल है जर्मनी में भी परिस्थिति अधिकाधिक फ़्रांस जैसी ही होती जा रही है।"*

सूदखोर राज्य परजीवी ह्रासोन्मुख पूंजीवाद का राज्य है और इस बात का प्रभाव संबंधित देशों की सभी सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों पर आम तौर पर, और मज़दूर वर्ग के आंदोलन की दो मूलभूत धाराओं पर ख़ास तौर पर, पड़े बिना नहीं रह सकता। इस बात को यथासंभव स्पष्टतम रूप में व्यक्त करने के लिए हम हाबसन का उद्धरण देंगे, जो सबसे "विश्वसनीय" गवाह हैं क्योंकि उन पर "मार्क्सवादी कट्टरपंथ" की ओर झुकाव रखने की शंका नहीं की जा सकती; दूसरी ओर वह अंग्रेज़ हैं, जो उस देश की परिस्थिति से भली भांति परिचित हैं जो उपनिवेशों के मामले में, वित्तीय पूंजी के मामले में तथा साम्राज्यवादी अनुभव के मामले में, सबसे समृद्ध है।

हाबसन के दिमाग़ में अंग्रेज़-बोएर युद्ध की याद ताज़ा थी और वह साम्राज्यवाद तथा "पूंजी लगानेवालों" के हितों के पारस्परिक संबंध, ठेकों से होनेवाले बढ़ते हुए मुनाफ़ों आदि का उल्लेख करते हैं और लिखते हैं: "यद्यपि इस निश्चित रूप से परजीवी नीति के संचालक पूंजीपति हैं, परन्तु यही उद्देश्य मज़दूरों के कुछ वर्गों को भी पसंद आते हैं। कई शहरों में उद्योग की सबसे महत्वपूर्ण शाखाएं सरकारी रोज़गार या ठेकों पर निर्भर रहती हैं; धातु के तथा जहाज़ बनाने के केंद्रों का साम्राज्यवाद काफ़ी बड़ी हद तक इसी बात पर निर्भर करता

* «Die Bank», १९११, १, पृष्ठ १०-११।

है।" इस लेखक की राय में पुराने साम्राज्य दो कारणों से कमज़ोर हुए हैं: (१) "आर्थिक परजीविता", और (२) पराश्रित जातियों के लोगों के आधार पर सेना का संगठन। "पहले तो आर्थिक परजीविता का स्वभाव है, जिसके वश शासक राज्य ने अपने प्रांतों, उपनिवेशों तथा आश्रित देशों को अपने शासक वर्ग को धनवान बनाने तथा निम्नतर वर्गों को रिश्वत देकर चुपचाप राज़ी कर लेने के लिए इस्तेमाल किया है।" और हम इसके साथ इतना और कहेंगे कि इस प्रकार की रिश्वत देने की आर्थिक संभावना के लिए, भले ही उसका कोई भी रूप हो, बहुत ऊंचे इजारेदारी मुनाफ़ों की आवश्यकता होती है।

दूसरे कारण के बारे में हाबसन लिखते हैं: "ग्रेट ब्रिटेन, फ़्रांस तथा अन्य साम्राज्यधारी राष्ट्र आगा-पीछा सोचे बिना जिस निश्चिंतता के साथ इस ख़तरनाक मार्ग पर प्रवेश कर रहे हैं, वह साम्राज्यवाद के अंधेपन की एक सबसे अद्भुत पहचान है। ग्रेट ब्रिटेन सबसे आगे निकल गया है। जिन लड़ाइयों द्वारा हमने अपने भारतीय साम्राज्य की स्थापना की है उनमें अधिकांशतः वहीं के निवासी लड़े थे, जैसा कि अभी हाल में मिस्र में हुआ है, भारत में भी बड़ी-बड़ी स्थायी सेनाएं ब्रिटिश सेनानायकों के आधीन कर दी गयी हैं; हमारे अफ़्रीकी राज्यों के सिलसिले में, दक्षिणी भाग को छोड़कर, जितनी भी लड़ाइयां हुई हैं उनमें भी हमारी तरफ़ से अधिकांश लड़ाइयां वहां के निवासियों ने ही की हैं।"

चीन के विभाजन के बाद परिस्थिति क्या हो जायेगी इसका आर्थिक दृष्टि से मूल्यांकन करते हुए हाबसन लिखते हैं: "उस दशा में यह संभव है कि पश्चिमी यूरोप के अधिकांश भाग की सूरत-शक्ल और विशेषताएं वही हो जायें जो हम इस समय भी इंगलैंड के दक्षिणी भाग के कुछ हिस्सों में, रिव्येरा में और इटली तथा स्विट्ज़रलैंड के धनिकों के रहायशी इलाक़ों में या उन हिस्सों में देखते हैं जहां सैर

के लिए ग्रानेवालों की भरमार रहती है, यानी धनवान अभिजात वर्गीय-लोगों के छोटे-छोटे समूह जो सुदूर पूर्व से डिवीडेंड और पेंशनें वसूल करेंगे, इससे कुछ बड़ा समूह पेशवर सेवकों तथा व्यापारियों का होगा और एक बहुत बड़ा समूह ज़ाती नौकर चाकरों और यातायात व्यवसाय तथा अधिक जल्दी ख़राब हो जानेवाली चीज़ों के उत्पादन की अंतिम अवस्थाओं में काम करनेवाले कर्मचारियों का होगा। सभी बुनियादी उद्योगों का लोप हो चुका होगा, मुख्य खाद्य-सामग्री तथा अध-तैयार माल एशिया तथा अफ़्रीका से नज़राने के रूप में आया करेगा।"

"हमने पश्चिमी राज्यों के इससे भी बड़े गंठजोड़ की, बड़ी ताक़तों के उस यूरोपीय संघ की संभावना का पहले ही से चित्रण कर दिया है जो अब तक की तरह विश्व सभ्यता के ध्येय को आगे बढ़ाने के बजाय संभव है पश्चिमी परजीविता का विशाल संकट खड़ा कर दे। यह उन उन्नत औद्योगिक राष्ट्रों का समूह होगा जिनके उच्चतर वर्ग एशिया तथा अफ़्रीका से नज़राना वसूल करेंगे, जिसकी सहायता से वे उन अत्यंत बहुसंख्यक सेवक-समुदायों का भरण-पोषण करेंगे, जिनसे कृषि अथवा कारख़ानों के मुख्य उद्योगों में काम नहीं लिया जायेगा बल्कि वे एक नये वित्तीय अभिजात वर्ग के नियंत्रण में निजी या छोटी-मोटी औद्योगिक सेवाएं किया करेंगे। जिन लोगों का इस सिद्धांत (इसे संभावना कहना अधिक उचित होगा) के बारे में "यह संदेह है कि यह विचार करने योग्य नहीं है वे दक्षिणी इंगलैंड के उन ज़िलों की आज की आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों की छानबीन करें जो इस हालत में पहुंच चुके हैं, और इस पद्धति के बहुत विस्तृत रूप से फैल जाने पर विचार करें जो महाजनों, 'पूंजी लगानेवालों' के ऐसे ही समूहों और उनके राजनीतिक तथा व्यापारिक पदाधिकारियों का चीन पर आर्थिक नियंत्रण स्थापित हो जाने से संभव हो सकता है, जो संसार में मुनाफ़े के अब तक ज्ञात सबसे बड़े निहित भंडार को धीरे-धीरे ख़ाली करते

रहेंगे ताकि उसका उपभोग यूरोप में कर सकें। परिस्थिति इतनी ज़्यादा जटिल है, विश्व-शक्तियों की पारस्परिक क्रिया इतनी ज़्यादा अज्ञेय है कि भविष्य के बारे में इस या किसी दूसरी कल्पना विशेष के संभव होने के बारे में निश्चय के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता; परन्तु आज पश्चिमी यूरोप का साम्राज्यवाद जिन प्रभावों के अधीन है वे इसी दिशा में जा रहे हैं और यदि उनका मुक़ाबला न किया जायेगा या उनकी दिशा को मोड़ा न जायेगा, तो वे इसी परिणति की ओर बढ़ते रहेंगे।"*

लेखक का कहना बिल्कुल ठीक है: **यदि** साम्राज्यवाद की शक्तियों का मुक़ाबला न किया गया तो वे ठीक उसी लक्ष्य की ओर बढ़ेंगी जिसका कि लेखक ने वर्णन किया है। वर्तमान साम्राज्यवादी परिस्थिति में "यूरोप के संयुक्त राज्य" के महत्व का मूल्यांकन सही-सही किया गया है। परन्तु उन्हें इतना और कह देना चाहिए था कि मज़दूर वर्ग के आंदोलन के **भीतर भी** अवसरवादी, जो इस समय अस्थायी तौर पर अधिकांश देशों में विजयी हो गये हैं, सुव्यवस्थित तथा अडिग रूप से इसी दिशा में "काम कर रहे" हैं। साम्राज्यवाद, जिसका अर्थ दुनिया का बंटवारा और चीन के अतिरिक्त अन्य देशों का भी शोषण है, जिसका अर्थ है कि इने-गिने बहुत धनवान देशों को बहुत ऊंचे इजारेदारी मुनाफ़े मिलें, सर्वहारा वर्ग के उच्चतर स्तरों को रिश्वत खिलाने की आर्थिक संभावना उत्पन्न करता है और इस प्रकार अवसरवाद का पोषण करता है, उसे एक निश्चित रूप देता है और उसे मजबूत करता है। परन्तु हमें उन शक्तियों की ओर से ध्यान नहीं हटने देना चाहिए जो आम तौर पर साम्राज्यवाद का और खास तौर पर अवसरवाद का मुक़ाबला

---

*हाबसन, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ १०३, २०५, १४४, ३३५, ३८६।

करती हैं, और स्वाभाविक ही है कि सामाजिक-उदारवादी हाबसन इन शक्तियों को देख नहीं पाते।

जर्मन अवसरवादी गेरहर्ड हिल्देब्रांड ने, जिन्हें साम्राज्यवाद का समर्थन करने के कारण पार्टी से निकाल दिया गया था और जो आज जर्मनी की तथाकथित "सामाजिक-जनवादी" पार्टी के नेता बन सकते हैं, अफ़्रीका के हब्शियों के खिलाफ़, "महान इस्लामी आंदोलन" के खिलाफ़, "शक्तिशाली सेना तथा नौ-सेना" क़ायम रखने के लिए, "चीनी-जापानी एकता" के खिलाफ़ और इसी तरह के अन्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए "संयुक्त" कार्रवाई के उद्देश्य से "पश्चिमी यूरोप के संयुक्त राज्य" (रूस को छोड़कर) का समर्थन करके हाबसन की बात की बड़े अच्छे ढंग से पूर्ति कर दी है।*

शुल्ज़े-गैवर्नित्ज़ की पुस्तक में "ब्रिटिश साम्राज्यवाद" का जो विवरण मिलता है उससे भी इन्हीं परजीवी प्रवृत्तियों का पता चलता है। १८६५ और १८९८ के बीच ग्रेट ब्रिटेन की राष्ट्रीय आय लगभग दुगनी हो गयी, और इसी काल में "विदेशों से" होनेवाली आय **नौगुनी** बढ़ी। जबकि साम्राज्यवाद का "गुण" इस बात में है कि वह "हब्शियों को उद्योग की आदतें सिखा देता है" (ज़ाहिर है, बल-प्रयोग के बिना नहीं...), तो साम्राज्यवाद की "खतरनाक बात" यह है कि "यूरोप शारीरिक श्रम का बोझ—पहले कृषि तथा खानों के काम का और फिर उद्योगों के ज़्यादा मोटे काम का—काली जातियों के कंधों पर डाल देगा और स्वयं सूदखोर बनकर संतुष्ट हो जायेगा और इस प्रकार वह, शायद, पहले काली और लाल जातियों की आर्थिक मुक्ति

---

* Gerhard Hildebrand, «*Die Erschütterung der Industrieherrschaft und des Industriesozialismus*» (उद्योगवाद तथा औद्योगिक समाजवाद के शासन का चकनाचूर होना—अनु०), १९१०, पृष्ठ २२९ तथा उसके आगे के पृष्ठ।

के लिए और बाद में उनकी राजनीतिक मुक्ति के लिए रास्ता साफ़ करेगा।"

ग्रेट ब्रिटेन में भूमि के निरंतर बढ़ते हुए भाग पर खेती बंद करके उसे खेल-कूद के लिए, अमीरों के मनोरंजन के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। स्काटलैंड के बारे में—जो संसार का सबसे ठाठदार क्रीड़ास्थल है—कहा जाता है कि "वह अपने अतीत और श्री कारनेगी (अमरीकी अरबपति) के बल पर जीवित है"। ब्रिटेन अकेले घुड़दौड़ और लोमड़ियों के शिकार पर प्रति वर्ष १,४०,००,००० पौंड (लगभग १३,००,००,००० रूबल) खर्च करता है। इंगलैंड में इस समय सूदखोरों की संख्या लगभग दस लाख है। कुल जनसंख्या में उत्पादक ढंग से रोज़गार में लगी हुई जनसंख्या का प्रतिशत अनुपात घटता जा रहा है:

	ब्रिटेन की जनसंख्या	बुनियादी उद्योगों में मज़दूरों की संख्या	कुल जनसंख्या का प्रतिशत अनुपात
	(लाखों में)		
१८५१	१७९	४१	२३%
१९०१	३२५	४९	१५%

और ब्रिटेन के मज़दूर वर्ग का उल्लेख करते समय "बीसवीं शताब्दी के आरंभ में ब्रिटिश साम्राज्यवाद" के पूंजीवादी अन्वेषकों को मज़दूरों के "**उच्चतर स्तर**" और "**ख़ास सर्वहारा वर्ग के निम्नतर स्तर**" के बीच बाक़ायदा अंतर करने पर मजबूर होना पड़ता है। सहकारी संस्थाओं, ट्रेड-यूनियनों, खेल-कूद के क्लबों तथा अनेक धार्मिक सम्प्रदायों के

अधिकांश सदस्य इसी उच्चतर स्तर के लोग होते हैं, निर्वाचन-व्यवस्था इसी स्तर के अनुकूल बनायी गयी है, ग्रेट ब्रिटेन में निर्वाचन-व्यवस्था "अभी तक **इतनी काफ़ी सीमित है कि खास सर्वहारा वर्ग का निम्नतर स्तर इसमें शामिल न हो सके**"!! ब्रिटेन के मज़दूर वर्ग की हालत को आकर्षक रूप में पेश करने के लिए, आम तौर पर इसी उच्चतर स्तर का उल्लेख किया जाता है, जो सर्वहारा वर्ग का बहुत ही **छोटा अल्पमत** है। उदाहरण के लिए, "बेरोज़गारी की समस्या मुख्यत: लंदन की और सर्वहारा वर्ग के निम्न स्तर की समस्या है **जिसको राजनीतिज्ञ बहुत कम महत्व देते हैं**"*... उन्हें कहना चाहिए था: जिसको पूंजीवादी राजनीतिज्ञ और "समाजवादी" अवसरवादी बहुत कम महत्व देते हैं।

जिन बातों का हम उल्लेख कर रहे हैं उनसे संबंधित साम्राज्यवाद की एक खास विशेषता यह है कि साम्राज्यवादी देशों से उत्प्रवास घटना जा रहा है और अधिक पिछड़े हुए देशों से, जहां कम मज़दूरी मिलती है, इन देशों में आप्रवास बढ़ता जा रहा है। जैसा कि हाबसन ने बताया है ग्रेट ब्रिटेन से उत्प्रवास १८८४ से घटता रहा है। उस वर्ष उत्प्रवासियों की संख्या २,४२,००० थी, जबकि १९०० में यह संख्या घटकर १,६९,००० रह गयी। जर्मनी से उत्प्रवास १८८१ और १८९० के बीच अपने उच्चतम शिखर पर पहुंचा, इन वर्षों में उत्प्रवासियों की कुल संख्या १४,५३,००० थी। इसके बाद के दो दशकों में यह संख्या घटकर ५,४४,००० और ३,४१,००० रह गयी। दूसरी ओर आस्ट्रिया, इटली, रूस तथा अन्य देशों से जर्मनी में आनेवाले मज़दूरों की संख्या में वृद्धि हुई। १९०७ की जनगणना के अनुसार जर्मनी में १३,४२,२९४ विदेशी थे जिनमें से ४,४०,८०० औद्योगिक मज़दूर

---

* Schulze-Gaevernitz, *«Britischer Imperialismus»*, पृष्ठ ३०१।

तथा २,५७,३२६ खेत-मज़दूर थे।* फ़्रांस में खनिज-उद्योग में जितने मज़दूर काम करते हैं वे "अधिकांशतः" विदेशी हैं : पोलैंडवासी, इटलीवासी तथा स्पेनी।** संयुक्त राज्य अमरीका में पूर्वी तथा दक्षिणी यूरोप के आप्रवासी ऐसे व्यवसायों में काम करते हैं जिनमें पारिश्रमिक बहुत ही कम मिलता है, जबकि ओवरसियरों तथा अच्छा वेतन पानेवाले कर्मचारियों में सबसे अधिक अनुपात अमरीकी कार्यकर्ताओं का है।*** साम्राज्यवाद में मज़दूरों के बीच भी विशेषाधिकारप्राप्त हिस्से पैदा कर देने और उन्हें सर्वहारा वर्ग की व्यापक जनता से अलग कर देने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि ग्रेट ब्रिटेन में मज़दूरों में फूट डालने, उनके बीच अवसरवाद को मज़बूत बनाने और मज़दूर वर्ग के आंदोलन में अस्थायी रूप से ह्रास पैदा कर देने की साम्राज्यवाद की प्रवृत्ति उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के आरंभ से बहुत पहले ही प्रकट हो गयी थी: क्योंकि साम्राज्यवाद की दो महत्वपूर्ण लाक्षणिक विशेषताएं ग्रेट ब्रिटेन में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में ही दिखायी पड़ने लगी थीं, अर्थात् विस्तृत औपनिवेशिक प्रदेश और विश्व के बाज़ार में इजारेदार स्थिति। मार्क्स तथा एंगेल्स ने बताया था कि मज़दूर वर्ग के आन्दोलन में अवसरवाद तथा ब्रिटिश पूंजीवाद की साम्राज्यवादी विशेषताओं के बीच यह संबंध बाक़ायदा पिछले कई दशकों

---

* *Statistik des Deutschen Reichs* (जर्मन साम्राज्य के आंकड़े— अनु०), भाग २११।

** Henger, «*Die Kapitalsanlage der Franzosen*» (फ़्रांस द्वारा लगायी गयी पूंजी), स्टटगार्ट, १९१३।

*** Hourwich, «*Immigration and Labour*», (आप्रवास तथा श्रम), न्यूयार्क, १९१३।

से क़ायम रहा है। उदाहरण के लिए, ७ अक्तूबर १८५८ को एंगेल्स ने मार्क्स को लिखा : "इंगलैंड का सर्वहारा वर्ग दिन प्रति दिन अधिक पूंजीवादी होता जा रहा है, जिससे नतीजा यह निकलता है कि समस्त राष्ट्रों में सबसे अधिक पूंजीवादी यह राष्ट्र स्पष्टतः इस लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है कि आख़िर में चलकर उसके पास एक पूंजीवादी अभिजात वर्ग, और पूंजीपति वर्ग **के साथ ही साथ** एक पूंजीवादी सर्वहारा वर्ग भी हो। ज़ाहिर है, एक ऐसे राष्ट्र के लिए, जो पूरी दुनिया का शोषण करता हो, कुछ हद तक इस बात का हक़ भी है।" लगभग पच्चीस वर्ष बाद ११ अगस्त, १८८१ के एक पत्र में एंगेल्स "...इंगलैंड के उन बदतरीन क़िस्म के ट्रेड-यूनियनों" का उल्लेख करते हैं, "जो ऐसे लोगों के नेतृत्व को स्वीकार करते हैं जिन्हें पूंजीपति वर्ग ने यदि ख़रीद नहीं लिया है तो कम से कम वे उससे वेतन तो पाते ही हैं।" १२ सितम्बर १८८२ को कौत्स्की के नाम एक पत्र में एंगेल्स ने लिखा : "आपने मुझसे पूछा है कि अंग्रेज़ मज़दूर औपनिवेशिक नीति के बारे में क्या सोचते हैं? तो इसका उत्तर यह है कि बिल्कुल वही जो वे आम तौर पर पूरी राजनीति के बारे में सोचते हैं। यहां मज़दूरों की कोई पार्टी नहीं है, यहां केवल रूढ़िवादी तथा उदारवादी आमूलवादी हैं और उपनिवेशों तथा विश्व के बाज़ार पर अपनी इजारेदारी के कारण इंगलैंड जो गुलछर्रे उड़ा रहा है उसमें मज़दूर भी ख़ुश होकर हिस्सा लेते हैं।"* (एंगेल्स ने "इंगलैंड में मज़दूर वर्ग की हालत"

---

* Briefwechsel von Marx und Engels (मार्क्स और एंगेल्स की चिट्ठी-पत्री), खण्ड २, पृष्ठ २६०; खण्ड ४, ४५३। Karl Kautsky, *«Sozialismus und Kolonialpolitik»*, बर्लिन १६०७, पृष्ठ ७६; यह पुस्तिका कौत्स्की ने उस अत्यंत सुदूर अतीत में लिखी थी जब वह मार्क्सवादी ही थे।

नामक अपनी रचना के दूसरे संस्करण की भूमिका में भी, जो १८९२ में प्रकाशित हुई थी, ऐसे ही विचार व्यक्त किये थे।)

इससे कारण तथा परिणाम बिल्कुल स्पष्ट हो जाते हैं। कारण ये हैं: (१) इस देश द्वारा पूरे विश्व का शोषण; (२) विश्व के बाज़ार में उसकी इजारेदार स्थिति; (३) उपनिवेशों पर उसकी इजारेदारी। परिणाम ये हैं: (१) ब्रिटिश सर्वहारा वर्ग का एक हिस्सा पूंजीवादी हो जाता है; (२) सर्वहारा वर्ग का एक हिस्सा ऐसे लोगों का नेतृत्व स्वीकार करता है जिन्हें पूंजीपति वर्ग ने यदि ख़रीद नहीं लिया है तो कम से कम वे उससे वेतन तो पाते ही हैं। बीसवीं शताब्दी के आरंभ के साम्राज्यवाद ने मुट्ठी-भर ऐसे राज्यों के बीच दुनिया को पूरी तरह बांट लिया था, जिनमें से प्रत्येक आज "पूरी दुनिया" के उससे कुछ ही छोटे भाग का शोषण करता है (अर्थात् उनसे अतिलाभ कमाता है) जितने भाग का शोषण इंगलैंड १८५८ में करता था; इनमें से प्रत्येक राज्य को ट्रस्टों, कार्टेलों, वित्तीय पूंजी तथा क़र्ज़ देनेवालों और क़र्ज़ लेनेवालों के संबंधों की बदौलत विश्व के बाज़ार में इजारेदार का पद प्राप्त है, इनमें से प्रत्येक राज्य को कुछ हद तक औपनिवेशिक इजारेदारी हासिल है (हम देख चुके हैं कि **पूरे** औपनिवेशिक जगत की कुल ७,५०,००,००० वर्ग किलोमीटर भूमि में से ६,५०,००,००० वर्ग किलोमीटर, अर्थात् ८६ प्रतिशत भूमि पर छः ताक़तों का क़ब्ज़ा है; ६,१०,००,००० वर्ग किलोमीटर, अर्थात् ८१ प्रतिशत भूमि पर तीन ताक़तों का क़ब्ज़ा है)।

वर्तमान स्थिति की लाक्षणिक विशेषता यह है कि आज ऐसी आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का बोलबाला है जिनमें अवसरवाद और मज़दूर वर्ग के आंदोलन के आम तथा बुनियादी हितों के बीच मेल न बैठ सकने की प्रवृत्ति का बढ़ना अनिवार्य था: साम्राज्यवाद एक अंकुर से बढ़कर एक प्रभुत्वशाली व्यवस्था बन गया है; अर्थ-व्यवस्था

तथा राजनीति में पूंजीवादी इजारेदारियों को प्रथम स्थान प्राप्त है; दुनिया का बंटवारा पूरा हो चुका है; दूसरी ओर हम यह देखते हैं कि ग्रेट ब्रिटेन की अविभक्त इजारेदारी के बजाय अब कुछ साम्राज्यवादी ताक़तें इस इजारेदारी में हिस्सा बंटाने के अधिकार के लिए कोशिश कर रही हैं और यह संघर्ष बीसवीं शताब्दी के आरंभ के पूरे काल की लाक्षणिकता है। अब अवसरवाद कई दशाब्दियों तक एक देश के मज़दूर वर्ग के आंदोलन में पूर्णतः विजयी नहीं रह सकता, जसा कि वह उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इंगलैंड में था, परन्तु कई देशों में वह पक चुका है, आवश्यकता से अधिक पक चुका है और सड़ गया है और "सामाजिक-अंधराष्ट्रवाद" के रूप में पूंजीवादी नीति के साथ घुल-मिलकर बिल्कुल एक हो गया है।*

९. साम्राज्यवाद की आलोचना

व्यापक अर्थ में साम्राज्यवाद की आलोचना से हमारा अभिप्राय यह है कि समाज के विभिन्न वर्ग अपनी आम विचारधारा के प्रसंग में साम्राज्यवादी नीति की ओर क्या रवैया अपनाते हैं।

एक ओर तो थोड़े-से लोगों के हाथों में संकेंद्रित वित्तीय पूंजी का अपार विस्तार और उसके द्वारा संबंधों तथा सम्पर्कों के असाधारण रूप से विस्तृत तथा घने जाल की रचना के कारण, जो केवल छोटे और

---

*रूसी सामाजिक-अंधराष्ट्रवाद भी, उसका खुला रूप भी जिसका प्रतिनिधित्व पोत्रेसोव, छेन्केली, मास्लोव आदि जैसे लोग करते हैं और उसका छुपा-ढका रूप भी, जिसका प्रतिनिधित्व छेईद्ज़े, स्कोबेलेव, अक्सेलरोद, मारतोव आदि जैसे लोग करते हैं, अवसरवाद की रूसी क़िस्म से, अर्थात् विसर्जनवाद से, निकला था।

मंझोले ही नहीं बल्कि बहुत ही छोटे पूंजीपतियों और छोटे मालिकों को भी अपने अधीन कर लेता है, और दूसरी ओर दुनिया के बंटवारे तथा दूसरे देशों पर प्रभुत्व के लिए महाजनों के अन्य जातीय-राज्यीय गुटों के ख़िलाफ़ चलाये जानेवाले निरंतर उग्रतर होते हुए संघर्ष के कारण, सम्पत्तिवान वर्ग पूरी तरह साम्राज्यवाद के पक्ष में चले जाते हैं। साम्राज्यवाद के उज्ज्वल भविष्य के बारे में "आम" उत्साह, उसका दृढ़तम समर्थन तथा उसे सबसे आकर्षक रूप में पेश करना—ये हैं इस युग के लक्षण। साम्राज्यवादी विचारधारा मज़दूर वर्ग में भी प्रविष्ट हो जाती है। उसके और दूसरे वर्गों के बीच कोई चीनी दीवार नहीं होती। जर्मनी की आजकल की तथाकथित "सामाजिक-जनवादी" पार्टी के नेताओं को "सामाजिक-साम्राज्यवादी" ठीक ही कहा जाता है, अर्थात् जो बातें समाजवादियों जैसी करते हैं और काम साम्राज्यवादियों जैसे; परन्तु अबसे बहुत पहले १९०२ में ही हावसन ने इंगलैंड में "फ़ेबियन साम्राज्यवादियों" के अस्तित्व को देख लिया था, जिनका संबंध अवसरवादी "फ़ेबियन सोसायटी"[10] से था।

पूंजीवादी विद्वान तथा लेखक आम तौर पर कुछ ढके-छुपे ढंग से साम्राज्यवाद की हिमायत करते हैं, वे उसके पूर्ण प्रभुत्व तथा उसकी गहरी जड़ों पर परदा डालने की कोशिश करते हैं, वे कुछ ख़ास बातों को और गौण महत्व की ब्योरे की बातों को ही सामने लाकर रखने की कोशिश करते हैं और "सुधार" की कुछ सर्वथा हास्यास्पद योजनाओं द्वारा, जैसे ट्रस्टों या बैंकों पर पुलिस की निगरानी आदि की योजनाओं द्वारा, बुनियादी बातों की ओर से ध्यान हटाने की कोशिश करते हैं। कभी-कभी ऐसे निर्लज्ज तथा बेधड़क साम्राज्यवादी सामने आते हैं जिनमें इस बात को स्वीकार करने का साहस होता है कि साम्राज्यवाद की बुनियादी लाक्षणिकताओं में सुधार करने का विचार बिल्कुल बेतुका है।

हम एक उदाहरण देंगे। "विश्व अर्थतंत्र की पुरालेखशाला" नामक पत्रिका में जर्मन साम्राज्यवादियों ने उपनिवेशों में, ज़ाहिर है विशेषत: उन उपनिवेशों में जिनपर जर्मनी का क़ब्ज़ा नहीं है, राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों को देखने की कोशिश की है। वे भारत में असंतोष तथा विरोध आंदोलनों का, नाटाल (दक्षिणी अफ़्रीका), डच ईस्ट इंडीज़, आदि के आंदोलनों का उल्लेख करते हैं। उनमें से एक ने, विभिन्न पराधीन राष्ट्रों तथा जातियों—एशिया, अफ़्रीका तथा यूरोप की विदेशी शासन के अधीन जातियों—के प्रतिनिधियों के एक सम्मेलन की, जो २८-३० जून, १९१० को हुआ था, अंग्रेज़ी रिपोर्ट पर अपनी टीका में इस सम्मेलन में दिये गये भाषणों का मूल्यांकन करते हुए लिखा है: "हमसे कहा जाता है कि हमें साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ लड़ना चाहिए; कि शासक राज्यों को पराधीन जातियों के स्वतंत्रता के अधिकार को स्वीकार करना चाहिए; कि बड़ी ताक़तों और कमज़ोर राष्ट्रों के बीच जो संधियां हों उनके परिपालन पर निगरानी रखने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय होना चाहिए। वे इस प्रकार की सुखद इच्छाएं व्यक्त करने से आगे नहीं बढ़ते। हम उसमें इस बात को समझने की कहीं झलक भी नहीं पाते कि साम्राज्यवाद का पूंजीवाद के वर्तमान रूप के साथ अटूट संबंध है और इसलिए (!!) साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ खुले संघर्ष के सफल होने की कोई आशा नहीं हो सकती, यदि संघर्ष कदाचित् केवल उसके कुछ विशेषत: घृणास्पद अत्याचारों के ख़िलाफ़ विरोध करने तक ही सीमित हो तो बात और है।"* चूंकि साम्राज्यवाद के आधार में सुधार करने की बात एक धोखा है, "एक कोरी इच्छा" है, चूंकि उत्पीड़ित राष्ट्रों के पूंजीवादी प्रतिनिधि इससे "और ज़्यादा" आगे नहीं बढ़ते, इसलिए एक उत्पीड़क राष्ट्र का पूंजीवादी प्रतिनिधि

---

* *Weltwirtschaftliches Archiv*, खण्ड २, पृष्ठ १९३।

"और ज्यादा" **पीछे की ओर** जाता है, "वैज्ञानिक" होने का दावा करने की आड़ में वह साम्राज्यवाद के तलुए सहलाने की ओर जाता है। सचमुच कमाल का "तर्क" है!

ये सवाल कि क्या साम्राज्यवाद के आधार में सुधार करना संभव है, क्या उन विरोधों को, जिन्हें वह जन्म देता है, और भी उग्र तथा गहरा बनाने की ओर आगे बढ़ना चाहिए या इन विरोधों को शांत करने की दिशा में पीछे हटना चाहिए, साम्राज्यवाद की आलोचना में बुनियादी प्रश्न हैं। चूंकि हर क्षेत्र में प्रतिक्रिया और वित्तीय अल्पतंत्र द्वारा किये जानेवाले उत्पीड़न के फलस्वरूप राष्ट्रीय उत्पीड़न में वृद्धि और खुली प्रतियोगिता का अंत साम्राज्यवाद की विशिष्ट राजनीतिक विशेषताएं हैं इसलिए बीसवीं शताब्दी के आरंभ में लगभग सभी साम्राज्यवादी देशों में साम्राज्यवाद के खिलाफ़ निम्न-पूंजीवादी जनवादी विरोध आरंभ हुआ। और कौत्स्की का तथा व्यापक अंतर्राष्ट्रीय कौत्स्कीवादी विचारधारा का मार्क्सवाद का पक्ष छोड़कर भाग जाना ठीक इसी बात में व्यक्त होता है कि कौत्स्की ने न केवल इस निम्न-पूंजीवादी, सुधारवादी विरोध का, जो अपने आर्थिक आधार की दृष्टि से वास्तव में प्रतिक्रियावादी है, विरोध करने का कष्ट नहीं उठाया, न केवल वह इस विरोध का विरोध करने में असमर्थ रहे, बल्कि व्यवहार में वह उसमें विलीन हो गये।

स्पेन के विरुद्ध १८९८ में जो साम्राज्यवादी युद्ध चलाया गया था उसपर संयुक्त राज्य अमरीका में "साम्राज्य-विरोधियों" का विरोध भड़क उठा, जो पूंजीवादी जनवाद के अंतिम अवशेष थे, उन्होंने इस युद्ध को "अपराधपूर्ण" घोषित किया, विदेशी इलाक़ों पर आधिपत्य करके उन्हें अपने राज्य में मिला लेने को संविधान का उल्लंघन ठहराया, और वहां के फ़िलिपाइन के मूलनिवासियों के नेता अग्वीनाल्दो के साथ जो व्यवहार किया गया था (अमरीकियों ने पहले उन्हें उनके

देश को स्वतंत्र कर देने का आश्वासन दिया, लेकिन बाद में वहां अपनी फ़ौजें उतार दीं और उसपर अपना क़ब्ज़ा जमा लिया), उसे "अंधराष्ट्रवादी विश्वासघात" ठहराया और लिंकन के शब्दों को उद्धृत करते हुए कहा: "जब गोरा आदमी अपने ऊपर शासन करता है तो वह स्वशासन होता है, लेकिन जब वह अपने ऊपर भी शासन करता है और दूसरों पर भी तब वह स्वशासन नहीं रह जाता, वह निरंकुश शासन बन जाता है।"* परन्तु जब तक यह आलोचना साम्राज्यवाद और ट्रस्टों के और इसलिए साम्राज्यवाद और पंजीवाद के आधारों के पारस्परिक अटूट संबंध को स्वीकार करने से कतराती रहेगी, जब तक वह बड़े पैमाने के पूंजीवाद और उसके विकास द्वारा पैदा होनेवाली शक्तियों के साथ मिलने से कतराती रहेगी—तब तक वह एक "कोरी इच्छा" ही रहेगी।

हाबसन ने भी अपनी साम्राज्यवाद की आलोचना में मुख्यत: यही रवैया अपनाया है। हाबसन न "साम्राज्यवाद की अनिवार्यता" वाली दलील का विरोध करके और जनता की "उपभोग-क्षमता को बढ़ाने" (पूंजीवाद के अंतर्गत!) की आवश्यकता पर ज़ोर देकर कौत्स्की के ही तर्कों को उससे पहले पेश कर दिया था। जिन लेखकों के हमने ऊपर अनेक बार उद्धरण दिये हैं, जैसे अगाहूद, अ० लैंसबर्ग, एल० अश्वेगें, और फ़ांसीसी लेखकों में विक्टर बेरार जिनकी "इंगलैंड तथा साम्राज्यवाद" नामक बहुत ही सतही रचना १६०० में प्रकाशित हुई थी, साम्राज्यवाद, बैंकों की सर्वशक्तिमानता, वित्तीय अल्पतंत्र आदि की आलोचना में निम्न-पूंजीवादी दृष्टिकोण अपनाते हैं। ये सभी लेखक, जो

* J. Patouillet, «*L'impérialisme américain*», दिजोन १६०४, पष्ठ २७२।

मार्क्सवादी होने का कोई दावा नहीं करते, साम्राज्यवाद को खुली प्रतियोगिता तथा जनवाद के मुक़ाबले पर खड़ा करते हैं, बगदाद रेलवे योजना की इसलिए निंदा करते हैं कि उससे झगड़े और युद्ध पैदा होते हैं, शांति की "सुखद कामनाएं" व्यक्त करते हैं, आदि। स्टाक तथा शेयर जारी करने से संबंधित अन्तर्राष्ट्रीय आंकड़ों के संकलनकर्ता ए० नेमार्क पर भी यही बात लागू होती है, जिन्होंने खरबों फ़्रांक की "अन्तर्राष्ट्रीय" प्रतिभूतियों का हिसाब लगाने के बाद १९१२ में आश्चर्य के साथ कहा, "क्या इस बात पर विश्वास करना संभव है कि शांति में विघ्न पड़ सकता है?.. इन बहुत बड़ी-बड़ी राशियों को देखते हुए, क्या कोई युद्ध छेड़ने का खतरा मोल लेगा?"*

पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों का यह भोलापन कोई आश्चर्य की बात नहीं है; बल्कि यह बताना कि वे इतने भोले हैं और साम्राज्यवाद के अंतर्गत शांति की बातें "गंभीरतापूर्वक" करना **उनके हित में** है। १९१४, १९१५ और १९१६ में जब कौत्स्की इसी पूंजीवादी-सुधारवादी दृष्टिकोण को अपनाते हैं कि शांति के सवाल पर "सभी लोग सहमत हैं" (साम्राज्यवादी, नामधारी समाजवादी और सामाजिक-शांतिवादी), तो उनमें मार्क्सवाद की क्या बात बाक़ी रह जाती है? साम्राज्यवाद का विश्लेषण करने और उसके विरोधों की गहराइयों का रहस्योद्घाटन करने के बजाय हम उन्हें टाल जाने, उनसे कतरा जाने की एक सुधारवादी "कोरी इच्छा" के अलावा और कुछ नहीं देखते हैं।

कौत्स्की द्वारा साम्राज्यवाद की आर्थिक आलोचना का एक नमूना देखिये। वह १८७२ तथा १९१२ में मिस्र के साथ ब्रिटेन के निर्यात

---

* *Bulletin de l'Institut International de Statistique*, खण्ड १९, ग्रंथ २, पृष्ठ २२५।

तथा आयात व्यापार को लेते हैं। पता यह चलता है कि यह निर्यात तथा आयात व्यापार ब्रिटेन के कुल वैदेशिक व्यापार की तुलना में कम बढ़ा है। इससे कौत्स्की यह निष्कर्ष निकालते हैं कि "हमारे लिए यह मान लेने का कोई कारण नहीं है कि सैनिक आधिपत्य के बिना केवल आर्थिक तत्वों की क्रिया के फलस्वरूप मिस्र के साथ ब्रिटेन के व्यापार में कम वृद्धि होती।" "पूंजी की फैलने की प्रवृत्ति को... साम्राज्यवाद के हिंसात्मक तरीक़ों से नहीं बल्कि शांतिपूर्ण जनवाद द्वारा सबसे अधिक प्रोत्साहन मिल सकता है।"*

कौत्स्की की यह दलील, जिसे उनके रूसी अलमबरदार (और सामाजिक-अंधराष्ट्रवादियों के रूसी संरक्षक) मि० स्पेक्तातोर[11] हर सुर में दोहराते हैं, साम्राज्यवाद की कौत्स्कीवादी आलोचना का आधार है और इसलिए हमें उसपर अधिक विस्तारपूर्वक विचार करना चाहिए। हम सबसे पहले हिल्फ़र्डिंग का एक उद्धरण देंगे जिनके निष्कर्षों के बारे में कौत्स्की ने कई मौक़ों पर, और विशेष रूप से अप्रैल १९१५ में, यह कहा है कि उन्हें "लगभग सभी समाजवादी सिद्धांतवेत्ताओं ने एकमत होकर स्वीकार कर लिया है"।

हिल्फ़र्डिंग लिखते ह, "यह सर्वहारा वर्ग का काम नहीं है कि वह स्वतंत्र व्यापार के बीते हुए युग की नीति तथा राज्य के प्रति विरोध की नीति के साथ अधिक प्रगतिशील पूंजीवादी नीति की तुलना करे। वित्तीय पूंजी की आर्थिक नीति के जवाब में, साम्राज्यवाद के जवाब में सर्वहारा वर्ग को स्वतंत्र व्यापार को नहीं बल्कि समाजवाद को पेश करना चाहिए। सर्वहारा नीति का लक्ष्य अब खुली प्रतियोगिता को

---

* Kautsky, «*Nationalstaat, imperialistischer Staat und Staatenbund*» (जातीय राज्य, साम्राज्यवादी राज्य और राज्यों का संघ–अनु०), नूरेनबर्ग १९१५, पृष्ठ ७२ तथा ७०।

पुनःस्थापित करने का आदर्श नहीं हो सकता है—जो कि अब एक प्रतिक्रियावादी आदर्श बन चुका है—बल्कि उसका लक्ष्य होना चाहिए पूंजीवाद के उन्मूलन द्वारा प्रतियोगिता का पूर्णतः अंत करना।"*

कौत्स्की ने वित्तीय पूंजी के युग में एक "प्रतिक्रियावादी आदर्श" का, "शांतिपूर्ण जनवाद" का, "केवल आर्थिक तत्वों की क्रिया" का समर्थन करके मार्क्सवाद के साथ अपना नाता तोड़ लिया, क्योंकि, **वस्तुगत दृष्टि से**, यह आदर्श हमें इजारेदार पूंजीवाद से पीछे की ओर, ग़ैर-इजारेदार पूंजीवाद की ओर खींच ले जाता है और यह एक सुधारवादी धोखेबाज़ी है।

मिस्र के साथ व्यापार (या किसी दूसरे उपनिवेश अथवा अर्ध-उपनिवेश के साथ) सैनिक आधिपत्य **के बिना**, साम्राज्यवाद के बिना तथा वित्तीय पूंजी के बिना "ज्यादा बढ़ा होता"। इसका क्या मतलब है? यदि आम तौर पर इजारेदारियों के, वित्तीय पूंजी के "संबंधों" या जुए (अर्थात् इजारेदारी भी) के कारण या कुछ देशों के उपनिवेशों पर इजारेदारी आधिपत्य के कारण खुली प्रतियोगिता को सीमित न किया गया होता तो पूंजीवाद का विकास और भी तीव्र गति से होता?

कौत्स्की की दलील का और कोई अर्थ हो ही नहीं सकता, और **यह** "अर्थ" निरर्थक है। यदि तर्क की दृष्टि से यह **मान भी लिया जाये** कि किसी भी प्रकार की इजारेदारी के बिना खुली प्रतियोगिता ने पूंजीवाद तथा व्यापार को और तीव्र गति से विकसित किया **होता**, तो क्या यह सच नहीं कि जितनी तेज़ी से व्यापार तथा पूंजीवाद का विकास होता है उतना ही उत्पादन तथा पूंजी का संकेंद्रण भी बढ़ता है, जो इजारेदारी

---

*"वित्तीय पूंजी", पृष्ठ ५६७।

को **जन्म देता है**? और इजारेदारियों का जन्म **हो चुका है**—ठीक इसी खुली प्रतियोगिता **में से**! यदि इजारेदारियां अब प्रगति की रफ़्तार को धीमा करने लगी हैं तो यह खुली प्रतियोगिता के पक्ष में कोई दलील नहीं है, जो इजारेदारियों को पैदा कर चुकने के बाद अब असंभव हो गयी है।

हम कौत्स्की की दलील को चाहे जिस तरफ़ से उलट-पुलट कर देखें, हम उसमें प्रतिक्रिया तथा पूंजीवादी सुधारवाद के अतिरिक्त और कुछ नहीं पायेंगे।

यदि हम इस दलील को ठीक भी कर दें और स्पेक्तातोर की तरह कहें कि इंगलैंड के साथ ब्रिटिश उपनिवेशों का व्यापार और देशों के साथ उनके व्यापार की तुलना में अब ज़्यादा धीमी रफ़्तार से बढ़ रहा है, तब भी कौत्स्की का बचाव नहीं होता, क्योंकि ग्रेट ब्रिटेन को इजारेदारी **ही**, साम्राज्यवाद **ही** नीचा दिखा रहा है, अंतर केवल यह है कि वह इजारेदारी और साम्राज्यवाद दूसरे देश के (अमरीका, जर्मनी) हैं। यह बात विदित है कि कार्टेलों ने एक नये तथा अनोखे क़िस्म के संरक्षणात्मक महसूलों को जन्म दिया है, अर्थात् जो माल निर्यात के लिए उपयुक्त होता है उसे संरक्षण दिया जाता है (एंगेल्स ने "पूंजी" के तीसरे खंड में इस बात का उल्लेख किया है)। यह भी विदित है कि कार्टेलों की तथा वित्तीय पूंजी की अपनी एक निराली पद्धति होती है, "बहुत ही सस्ते दामों पर माल का निर्यात करना," जिसे अंग्रेज "माल से पाट देना" कहते हैं: अपने देश में तो कार्टेल चीज़ों को बहुत ऊंची इजारेदारी क़ीमतों पर बेचता है, लेकिन उसी चीज़ को विदेशों में वह अपने प्रतियोगियों का पत्ता काटने, स्वयं अपना उत्पादन अधिकतम बढ़ाने आदि के लिए बहुत ही कम क़ीमतों पर बेचता है। यदि ब्रिटिश उपनिवेशों के साथ जर्मनी का व्यापार ग्रेट ब्रिटेन के

व्यापार की अपेक्षा ज़्यादा तेज़ी से बढ़ रहा है तो इससे केवल यही सिद्ध होता है कि जर्मन साम्राज्यवाद ब्रिटिश साम्राज्यवाद की तुलना में अधिक अल्पवयस्क, अधिक बलवान तथा अधिक सुसंगठित है, वह उससे श्रेष्ठतर है, परन्तु इससे स्वतंत्र व्यापार की "श्रेष्ठता" हरगिज़ सिद्ध नहीं होती क्योंकि यह स्वतंत्र व्यापार और संरक्षण तथा औपनिवेशिक निर्भरता की नहीं बल्कि दो प्रतिद्वंद्वी साम्राज्यवादों की, दो इजारेदारियों की, वित्तीय पूंजी के दो दलों की लड़ाई है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के मुक़ाबले में जर्मन साम्राज्यवाद की श्रेष्ठता औपनिवेशिक हदबंदियों या संरक्षणात्मक महसूलों की दीवार से अधिक शक्तिशाली है: इस बात को स्वतंत्र व्यापार तथा "शांतिपूर्ण जनवाद" **के पक्ष में** एक "दलील" के रूप में इस्तेमाल करना बहुत ही घटिया बात है, इसका मतलब है साम्राज्यवाद की मूलभूत विशेषताओं तथा लाक्षणिकताओं को भूल जाना, मार्क्सवाद का स्थान निम्न-पूंजीवादी सुधारवाद को दे देना।

यह बात दिलचस्प है कि अ० लैंसबर्ग जैसा पूंजीवादी अर्थशास्त्री भी, जिसकी साम्राज्यवाद की आलोचना उतनी ही निम्न-पूंजीवादी ढंग की है जितनी कौत्स्की की आलोचना, व्यापार-संबंधी आंकड़ों के अधिक वैज्ञानिक अध्ययन के ज़्यादा निकट पहुंच गया। उन्होंने अललटप्प किसी एक देश को और केवल एक उपनिवेश को चुनकर उसकी तुलना अन्य देशों के साथ नहीं की; उन्होंने एक साम्राज्यवादी देश के निर्यात व्यापार के बारे में इस प्रकार छानबीन की: (१) उन देशों के साथ उसका व्यापार जो वित्तीय दृष्टि से उसपर निर्भर हैं, जो उससे पैसा उधार लेते हैं; और (२) उन देशों के साथ उसका व्यापार जो वित्तीय दृष्टि से स्वतंत्र हैं। उन्हें ये आंकड़े प्राप्त हुए:

जर्मनी का निर्यात व्यापार

(लाख मार्कों में)

		१८८९	१९०८	प्रतिशत वृद्धि
उन देशों को जो वित्तीय दृष्टि से जर्मनी पर निर्भर हैं:	रूमानिया . . .	४८२	७०८	४७
	पुर्तगाल	१९०	३२८	७३
	अर्जेन्टाइना . . .	६०७	१,४७०	१४३
	ब्राज़ील	४८७	८४५	७३
	चिली	२८३	५२४	८५
	तुर्की	२९९	६४०	११४
	कुल . . .	२,३४८	४,५१५	९२
उन देशों को जो वित्तीय दृष्टि से जर्मनी पर निर्भर नहीं हैं:	ग्रेट ब्रिटेन . . .	६,५१८	९,९७४	५३
	फ़्रांस	२,१०२	४,३७९	१०८
	बेलजियम . . .	१,३७२	३,२२८	१३५
	स्विट्ज़रलैंड . .	१,७७४	४,०११	१२७
	आस्ट्रेलिया . . .	२१२	६४५	२०५
	डच ईस्ट इंडीज़ .	८८	४०७	३६३
	कुल . . .	१२,०६६	२२,६४४	८७

लैंसबर्ग ने **कोई निष्कर्ष** नहीं निकाले और इसलिए, यह आश्चर्य की बात है, वह यह नहीं देख पाये कि **यदि** आंकड़ों से कुछ सिद्ध होता है तो यही सिद्ध होता है कि वह **ग़लती** पर हैं, क्योंकि उन देशों की अपेक्षा जो वित्तीय दृष्टि से स्वतंत्र हैं उन देशों को, जो वित्तीय दृष्टि से जर्मनी पर निर्भर हैं, निर्यात **ज़्यादा तेज़ी से** बढ़ा है, भले ही अंतर बहुत थोड़ा है। (हमने "यदि" शब्द पर ज़ोर इसलिए दिया है कि लैंसबर्ग के आंकड़े बहुत अधूरे हैं।)

निर्यात और ऋणों के पारस्परिक संबंध का पता लगाते हुए लैंसबर्ग लिखते हैं:

"१८६०-६१ में जर्मनी के बैंकों की मारफ़त रूमानिया के लिए क़र्ज़ जुटाया गया, जिन्होंने इस क़र्ज़ में से इससे पहले ही के वर्षों में पेशगी रक़म दे रखी थी। यह क़र्ज़ मुख्यत: जर्मनी में रेलों का सामान ख़रीदने के लिए था। १८६१ में जर्मनी ने रूमानिया को ५,५०,००,००० मार्क का माल निर्यात किया। अगले वर्ष यह रक़म गिरकर ३,६४,००,००० मार्क, और कुछ उतार-चढ़ावों के बाद १६०० में २,५४,००,००० मार्क रह गयी। अभी पिछले कुछ वर्षों में जाकर दो नये ऋणों की बदौलत यह निर्यात फिर १८६१ के स्तर पर पहुंच पाया है।

"१८८८-८६ के ऋणों के बाद पुर्तगाल को जर्मनी से भेजे जानेवाले माल की क़ीमत बढ़ते-बढ़ते (१८६० में) २,११,००,००० हो गयी; फिर इसके बाद के दो वर्षों में वह घटते-घटते १,६२,००,००० और ७४,००,००० रह गयी और १६०३ में जाकर फिर अपने पिछले स्तर पर पहुंच गयी।

"अर्जेन्टाइना के साथ जर्मनी के व्यापार के आंकड़े और भी सारगर्भित हैं। १८८८ और १८६० में जुटाये गये ऋणों के बाद अर्जेन्टाइना को जर्मनी का निर्यात १८८६ में ६,०७,००,००० मार्क तक पहुंच गया। दो वर्ष बाद यह निर्यात केवल १,८६,००,००० मार्क तक ही पहुंचा, अर्थात् पिछली राशि की तुलना में तिहाई से भी कम। १६०१ में जाकर ही निर्यात १८८६ के स्तर तक पहुंच गया तथा उससे बढ़ सका और वह भी राज्य तथा नगरपालिकाओं द्वारा जुटाये गये ऋणों की बदौलत, बिजली के सामानों के कारखाने बनाने के लिए पेशगी देकर और ऋणों के अन्य लेन-देन के कारण।

"१८८६ के ऋण के कारण चिली को होनेवाला निर्यात बढ़कर (१८६२ में) ४,५२,००,००० मार्क तक पहुंच गया, और एक वर्ष बाद घटकर फिर २,२५,००,००० मार्क रह गया। १६०६ में जर्मनी के बैंकों ने चिली के लिए फिर नया ऋण जुटाया जिसके बाद १६०७ में निर्यात बढ़कर ८,४७,००,००० मार्क तक पहुंच गया, लेकिन १६०८ में फिर घटकर ५,२४,००,००० मार्क रह गया।"*

इन तथ्यों से लैंसबर्ग यह दिलचस्प निम्न-पूंजीवादी ढंग का निष्कर्ष निकालते हैं कि निर्यात व्यापार जब ऋणों के साथ बंधा रहता है तो वह कितना अस्थायी और अनियमित होता है, अपने देश के उद्योगों को "स्वाभाविक ढंग से" तथा "सामंजस्यपूर्वक" विकसित करने के बजाय विदेशों में पूंजी लगाना कितना बुरा होता है, विदेशों के लिए ऋण जुटाने में क्रुप्प को जो करोड़ों की बख्शीश देनी पड़ती है वह कितनी "महंगी" बैठती है, आदि। परन्तु इन तथ्यों से हमें साफ़-साफ़ पता चलता है कि निर्यात में वृद्धि का संबंध वित्तीय पूंजी के **ठीक इन्हीं** जालबट्टों से है। उसे पूंजीवादी नैतिकता की फ़िक्र नहीं होती बल्कि फ़िक्र होती है दोहरी कमाई की – पहले तो वह ऋण से होनेवाला मुनाफ़ा हड़प कर जाती है, फिर जब ऋण लेनेवाला **उसी** ऋण से क्रुप्प से माल खरीदता है या स्टील सिंडीकेट से रेलों का सामान, आदि खरीदता है तो वह इस व्यापार से होनेवाला मुनाफ़ा भी हड़प कर लेती है।

हम एक बार फिर कहते हैं कि हम किसी भी प्रकार लैंसबर्ग के आंकड़ों को दोषरहित नहीं समझते, पर हमें उनको इसलिए उद्धृत करना पड़ा कि वे कौत्स्की तथा स्पेक्तातोर के आंकड़ों की अपेक्षा अधिक

---

*«*Die Bank*», १६०६, २, पृष्ठ ८१६ तथा उसके बाद के पृष्ठ।

विज्ञानसंगत हैं और इसलिए कि लैंसबर्ग ने इस समस्या पर विचार करने का सही तरीक़ा दिखाया। निर्यात आदि के प्रसंग में वित्तीय पूंजी के महत्व पर विचार करते समय हमें और बातों से अलग इस बात का पता लगाना चाहिए कि निर्यात का विशेषतः तथा शुद्धतः महाजनों की तिकड़मों के साथ विशेषतः तथा शुद्धतः कार्टेलों द्वारा माल की बिक्री आदि के साथ क्या संबंध है। केवल उपनिवेशों की तुलना और ग़ैर-उपनिवेशों के साथ, एक साम्राज्यवाद की दूसरे साम्राज्यवाद के साथ, एक अर्ध-उपनिवेश या उपनिवेश (मिस्र) की अन्य सभी देशों के साथ करने का मतलब इस प्रश्न के असली **निचोड़** से कतराना और उसपर परदा डालना है।

कौत्स्की की साम्राज्यवाद की सैद्धांतिक आलोचना और मार्क्सवाद के बीच कोई समानता नहीं है और वह केवल अवसरवादियों तथा सामाजिक-अंधराष्ट्रवादियों के साथ शांति तथा एकता का प्रचार करने की केवल एक भूमिका मात्र है, इसका कारण ठीक यही है कि वह साम्राज्यवाद के बहुत गहरे तथा आधारभूत विरोधों से कतराती है तथा उनपर परदा डालती है। ये विरोध हैं : इजारेदारी और उसके साथ ही साथ अस्तित्व में रहनेवाली खुली प्रतियोगिता का पारस्परिक विरोध, वित्तीय पूंजी के विशाल पैमाने के "सौदों" (और विशाल मुनाफ़ों) तथा खुले बाज़ार में "ईमानदारी के" व्यापार का पारस्परिक विरोध, एक ओर कार्टेलों तथा ट्रस्टों और दूसरी ओर कार्टेलों से मुक्त उद्योगों का पारस्परिक विरोध, आदि।

कौत्स्की ने "अति-साम्राज्यवाद" के जिस कुख्यात सिद्धांत का आविष्कार किया है वह भी इतना ही प्रतिक्रियावादी है। इस विषय में उन्होंने १६१५ में जो तर्क दिये हैं उनकी तुलना १६०२ में हाबसन द्वारा दिये गये तर्कों के साथ करके देखिये।

कौत्स्की : "...क्या यह नहीं हो सकता कि वर्तमान साम्राज्यवादी नीति का स्थान एक नयी, अति-साम्राज्यवादी नीति ले ले, जो राष्ट्रीय वित्तीय पूंजियों की पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता के बजाय अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर एकबद्ध वित्तीय पूंजी द्वारा दुनिया का मिलकर शोषण करने की पद्धति लागू करे? पूंजीवाद की इस नयी अवस्था की कम से कम कल्पना तो की ही जा सकती है। क्या यह अवस्था प्राप्त की जा सकती है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए अभी हमारे पास काफ़ी आधारभूत तथ्य नहीं हैं?"*

हाबसन : "बहुत-से लोगों का ऐसा विचार है कि वर्तमान प्रवृत्तियों की सबसे न्यायसंगत परिणति यह होगी कि ईसाई-जगत इस प्रकार कुछ बड़े-बड़े संघात्मक साम्राज्यों में विभाजित हो जाये, जिनमें से हर एक के अधीन कुछ असभ्य परतंत्र देश हों, और यह एक ऐसी बात होगी जिससे अंतर-साम्राज्यवाद के आश्वस्त आधार पर स्थायी शांति की सबसे अधिक आशा की जा सकती है।"

जिस चीज़ को हाबसन ने तेरह वर्ष पहले अंतर-साम्राज्यवाद कहा था उसी को कौत्स्की ने अति-साम्राज्यवाद या महा-साम्राज्यवाद कहा। एक नया और चुस्त आकर्षक शब्द गढ़ लेने के अतिरिक्त, जिसमें एक उपसर्ग के स्थान पर दूसरा उपसर्ग रख दिया गया है, कौत्स्की ने "वैज्ञानिक" विचारों के क्षेत्र में जो एकमात्र प्रगति की है वह यह कि हाबसन ने जिस चीज़ का वर्णन अंग्रेज़ पादरियों के धर्मोपदेश के रूप में किया था उसे उन्होंने मार्क्सवाद कहकर प्रस्तुत किया है। अंग्रेज़-बोएर युद्ध के बाद इस अत्यंत सम्मानित बिरादरी के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वह ब्रिटिश मध्यम वर्ग के उन लोगों को तथा उन मज़दूरों को

---

* *«Neue Zeit»*, ३० अप्रैल, १९१५, पृष्ठ १४४।

सांत्वना देने की पूरी कोशिश करे जिनके बहुत-से सगे-संबंधी दक्षिणी अफ़्रीका के रणक्षेत्र में मारे गये थे और जिन्हें और अधिक टैक्स देने पर मजबूर किया जा रहा था ताकि ब्रिटिश महाजनों के लिए और अधिक मुनाफ़ा सुनिश्चित हो सके। और इस सिद्धांत से बढ़कर सांत्वना और क्या हो सकती थी कि साम्राज्यवाद इतना बुरा नहीं है, कि वह अंतर- (या अति-) साम्राज्यवाद के बहुत निकट है जिससे स्थायी शांति सुनिश्चित हो सकती है? अंग्रेज़ पादरियों या भावुक कौत्स्की की सदिच्छाएं कुछ भी रही हों पर कौत्स्की के "सिद्धांत" का जो एकमात्र वस्तुगत, अर्थात्, असली सामाजिक महत्व हो सकता है वह यह है कि वह आम जनता का ध्यान वर्तमान युग के तीव्र विरोधों तथा उग्र समस्याओं की ओर से हटाकर तथा उसे भविष्य में आनेवाले कल्पित "अति-साम्राज्यवाद" की भ्रममूलक संभावना की ओर निर्देशित करके उसे पूंजीवाद के अंतर्गत स्थायी शांति के संभव होने की आशाओं से सांत्वना देने का एक अत्यंत प्रतिक्रियावादी तरीक़ा है। जनता को धोखा देना—कौत्स्की के "मार्क्सवादी" सिद्धांत में इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

वास्तव में यदि हम सुविदित तथा अकाट्य तथ्यों की तुलना भर कर लें तो हमें विश्वास हो जायेगा कि कौत्स्की जर्मन मज़दूरों के सामने (और सभी देशों के मज़दूरों के सामने) जिन संभावनाओं का आकर्षक चित्र प्रस्तुत करना चाहते हैं वे कितनी झूठी हैं। भारत, हिंद-चीन तथा चीन का उदाहरण ले लीजिये। यह विदित है कि ये तीन औपनिवेशिक तथा अर्ध-औपनिवेशिक देश, जिनकी कुल आबादी साठ से सत्तर करोड़ तक है, कई साम्राज्यवादी ताक़तों की—ग्रेट ब्रिटेन, फ़्रांस, जापान, संयुक्त राज्य अमरीका आदि की—वित्तीय पूंजी के शोषण का शिकार हैं। मान लीजिये कि ये साम्राज्यवादी देश इन एशियाई राज्यों में अपने अधिकृत क्षेत्रों, अपने हितों और अपने "प्रभाव-क्षेत्रों" की रक्षा

करने या उन्हें बढ़ाने के उद्देश्य से एक-दूसरे के खिलाफ़ गंठजोड़ कर लेते हैं; ये गंठजोड़ "अंतर-साम्राज्यवादी" अथवा "अति-साम्राज्यवादी" गंठजोड़ होंगे। मान लीजिये कि **सभी** साम्राज्यवादी देश एशिया के इन भागों का "शांतिपूर्वक" बंटवारा कर लेने के लिए आपस में गंठजोड़ कर लेते हैं; यह गंठजोड़ "अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर एकबद्ध वित्तीय पूंजी" का गंठजोड़ होगा। बीसवीं शताब्दी के इतिहास में इस प्रकार के गंठजोड़ों के वास्तविक उदाहरण मिलते हैं, जैसे चीन की ओर बड़ी ताक़तों का रवैया। हम पूछते हैं कि यदि हम इस बात को मान भी लें कि पूंजीवादी व्यवस्था ज्यों की त्यों बनी रहेगी—और कौत्स्की ने इस बात को मान लिया है—तो क्या इस बात की "कल्पना की जा सकती" है कि इस प्रकार के गंठजोड़ अस्थायी नहीं होंगे, कि वे हर प्रकार के टकरावों, झगड़ों तथा संघर्षों को खत्म कर देंगे?

इस प्रश्न को स्पष्ट रूप से पेश कर देना ही इस बात के लिए काफ़ी है कि उसका नहीं के अलावा और कोई उत्तर नहीं हो सकता, क्योंकि पूंजीवाद के अंतर्गत प्रभाव-क्षेत्रों, हितों, उपनिवेशों आदि के बंटवारे के लिए इस बंटवारे में भाग लेनेवालों की **ताक़त**, उनकी आम आर्थिक, वित्तीय, सैनिक ताक़त का हिसाब लगाने के अतिरिक्त और किसी दूसरे आधार की कल्पना **नहीं** की जा सकती। और विभाजन में भाग लेनेवालों की ताक़त में समान रूप से परिवर्तन नहीं होता, क्योंकि पूंजीवाद के अंतर्गत विभिन्न कारखानों, ट्रस्टों, उद्योगों की शाखाओं या देशों का **समान** विकास असंभव है। अबसे पचास वर्ष पहले इंगलैंड की उस समय की ताक़त की तुलना में जर्मनी अपनी पूंजीवादी ताक़त की दृष्टि से एक बहुत ही कमज़ोर तथा नगण्य देश था; रूस की तुलना में जापान की यही हालत थी। क्या इस बात की "कल्पना की जा सकती" है कि दस या बीस वर्षों में साम्राज्यवादी ताक़तों की आपेक्षित शक्ति में कोई परिवर्तन **न** हुआ होता? कदापि नहीं।

इसलिए अंग्रेज़ पादरियों या जर्मन "मार्क्सवादी" कौत्स्की की ओछी कूपमंडूकों जैसी कल्पनाओं में नहीं बल्कि पूंजीवादी व्यवस्था की वास्तविकताओं में "अंतर-साम्राज्यवादी" अथवा "अति-साम्राज्यवादी" गंठजोड़—उनका रूप कुछ भी हो, चाहे वह एक साम्राज्यवादी गंठजोड़ के ख़िलाफ़ दूसरे गंठजोड़ के रूप में हो या **सभी** साम्राज्यवादी ताक़तों के आम गंठजोड़ के रूप में हो—**अनिवार्यतः** युद्धों के बीच के कालों में "युद्ध-विराम" से ज़्यादा और कुछ नहीं होते। शांतिपूर्ण गंठजोड़ युद्धों के लिए ज़मीन तैयार करते हैं और स्वयं भी इन्हीं युद्धों में से उत्पन्न होते हैं, एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं और विश्व अर्थ-व्यवस्था तथा विश्व राजनीति के भीतर साम्राज्यवादी बंधनों तथा संबंधों के **उसी एक ही** आधार में से संघर्ष के शांतिपूर्ण तथा अ-शांतिपूर्ण रूपों को बारी-बारी से जन्म देते हैं। परन्तु मज़दूरों को शांत करने के लिए और उन सामाजिक-अंधराष्ट्रवादियों के साथ उनका मेल करा देने के उद्देश्य से, जो भागकर पूंजीपति वर्ग में जा मिले हैं, बुद्धिमान कौत्स्की एक ही शृंखला की एक कड़ी को दूसरी कड़ी से **अलग कर देते हैं**, चीन को "शांत करने" (बाक्सर विद्रोह[12] की याद कीजिये) के लिए **सभी** ताक़तों के वर्तमान शांतिपूर्ण (और अति-साम्राज्यवादी, बल्कि अति-अति-साम्राज्यवादी) गंठजोड़ को कल होनेवाले उस अ-शांतिपूर्ण झगड़े से अलग कर देते हैं, जो शायद परसों तुर्की के बंटवारे के लिए एक दूसरे "शांतिपूर्ण" आम गंठजोड़ के लिए ज़मीन तैयार करेगा, **आदि, आदि**। साम्राज्यवादी शांति के कालों तथा साम्राज्यवादी युद्ध के कालों के बीच जो सजीव संबंध है उसे बताने के बजाय कौत्स्की मज़दूरों के सामने एक निष्प्राण अमूर्त विचार रखते हैं ताकि उनके निष्प्राण नेताओं से उनका मेल करा दें।

हिल नामक एक अमरीकी लेखक ने अपनी "यूरोप के अन्तर्राष्ट्रीय विकास में कूटनीति का इतिहास" नामक रचना की भूमिका

में कूटनीति के आधुनिक इतिहास के निम्नलिखित काल बताये हैं : (१) क्रांति का युग ; (२) सांविधानिक आंदोलन ; (३) "वाणिज्यिक साम्राज्यवाद" का वर्तमान युग।* एक दूसरे लेखक ने १८७० से ग्रेट ब्रिटेन की "विश्व नीति" के इतिहास को चार कालों में विभाजित किया है : (१) प्रथम एशियाई युग (मध्य एशिया में भारत की दिशा में रूस की प्रगति के ख़िलाफ़ संघर्ष) ; (२) अफ़्रीकी युग (लगभग १८८५-१९०२) : अफ़्रीका के बंटवारे के लिए फ़्रांस के ख़िलाफ़ संघर्ष का युग (१८९८ का "फ़शोदा कांड" जिसमें फ़्रांस के साथ उसका युद्ध होते-होते बचा) ; (३) दूसरा एशियाई युग (रूस के ख़िलाफ़ जापान के साथ गंठजोड़) और (४) "यूरोपीय" युग, मुख्यत: जर्मन-विरोधी।** इटली में कारोबार करनेवाली फ़्रांसीसी वित्तीय पूंजी किस प्रकार इन देशों के राजनीतिक गंठजोड़ के लिए रास्ता साफ़ कर रही थी, और किस प्रकार फ़ारस के सवाल पर जर्मनी तथा ग्रेट ब्रिटेन के बीच और चीनी ऋणों के सवाल पर सभी यूरोपीय पूंजीपतियों के बीच एक झगड़ा पैदा हो रहा था, आदि आदि बातों का हवाला देते हुए "बैंकपति" रीसेर ने १९०५ में लिखा कि "सैनिक चौकियों की राजनीतिक झड़पें वित्तीय क्षेत्र में होती हैं"। देखिये, यह है साधारण साम्राज्यवादी झगड़ों के अभिन्न प्रसंग में शांतिपूर्ण "अति-साम्राज्यवादी" गठजोड़ों की सजीव वास्तविकता।

कौत्स्की साम्राज्यवाद के सबसे गहरे विरोधों पर जो परदा डालते हैं, वह अनिवार्य रूप से साम्राज्यवाद पर मुलम्मा चढ़ाने का रूप धारण कर लेता है, उसकी छाप इस लेखक की साम्राज्यवाद की राजनीतिक

---

* David Jayne Hill, «*A History of the Diplomacy in the International Development of Europe*», खंड १, पृष्ठ १०।

** शिल्दर, पहले उद्धृत की गयी पुस्तक, पृष्ठ १७८।

विशेषताओं की आलोचना पर भी दिखायी देती है। साम्राज्यवाद वित्तीय पूंजी तथा इजारेदारियों का युग है, जो हर जगह स्वतंत्रता की भावना को नहीं बल्कि प्रभुत्व स्थापित करने की चेष्टा को जन्म देता है। इन प्रवृत्तियों का परिणाम यह होता है कि हर क्षेत्र में, उसकी राजनीतिक व्यवस्था कुछ भी हो, प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है और इस क्षेत्र में भी मौजूदा विरोध अत्यंत उग्र रूप धारण कर लेते हैं। जातीय उत्पीड़न का भार तथा दूसरों के इलाक़े को अपने राज्य में मिला लेने की चेष्टा, अर्थात् जातीय स्वतंत्रता का हनन (क्योंकि दूसरों के इलाक़े को अपने राज्य में मिला लेने का मतलब जातियों के आत्म-निर्णय के अधिकार के उल्लंघन के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता है) विशेष रूप से उग्र रूप धारण कर लेते हैं। हिल्फ़र्डिंग ने साम्राज्यवाद तथा जातीय उत्पीड़न के उग्र होने के पारस्परिक संबंध को ठीक पहचाना है। वह लिखते हैं, "जिन देशों के मार्ग अभी नये-नये खुले हैं उनमें बाहर से आनेवाली पूंजी विरोधों को गहरा बना देती है और बाहर से आकर हस्तक्षेप करनेवालों के ख़िलाफ़ उन देशों की जनता के निरंतर बढ़ते हुए विरोध का जन्म देती है क्योंकि जनता में जातीय चेतना आने लगती है; यह विरोध विदेशी पूंजी के ख़िलाफ़ आसानी से ख़तरनाक रूप धारण कर सकता है। पुराने सामाजिक संबंधों में पूर्णतः एक क्रांतिकारी परिवर्तन आ जाता है, 'इतिहास रहित राष्ट्रों' का युगों पुराना कृषि पर आधारित पार्थक्य नष्ट हो जाता है और वे खिंचकर पूंजीवाद के भंवर में आ जाते हैं। पूंजीवाद स्वयं पराधीन जातियों को उनकी मुक्ति के साधन तथा उपाय प्रदान करता है और वे उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अग्रसर होती हैं जो किसी समय यूरोपीय राष्ट्रों को सर्वोपरि लक्ष्य प्रतीत होता था: आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्वतंत्रता के माध्यम के रूप में एक संयुक्त जातीय राज्य की रचना। जातीय स्वतंत्रता का यह आंदोलन यूरोपीय पूंजी के लिए उसके शोषण के सबसे बहुमूल्य तथा सबसे

ग्राशाप्रद क्षेत्रों में एक ख़तरा बन जाता है और यूरोपीय पूंजी अपने प्रभुत्व को केवल अपने सैन्य-बल में निरंतर वृद्धि करके ही क़ायम रख सकती है।"*

इसके साथ ही यह और कह देना चाहिए कि नये देशों में ही नहीं बल्कि पुराने देशों में भी साम्राज्यवाद दूसरों के इलाक़े को अपने राज्य में मिलाने की दिशा में, जातीय उत्पीड़न को बढ़ाने की दिशा में जा रहा है और फलस्वरूप उसके ख़िलाफ़ विरोध भी बढ़ रहा है। कौत्स्की इस बात पर तो आपत्ति करते हैं कि साम्राज्यवाद राजनीतिक प्रतिक्रिया को बल देता है, पर वह एक ऐसे प्रश्न को बिल्कुल अंधकार में छोड़ देते हैं, जो विशेषतः तात्कालिक महत्व का हो गया है, अर्थात् यह प्रश्न कि साम्राज्यवाद के युग में अवसरवादियों के साथ एकता असंभव है। वह दूसरों के इलाक़े को अपने राज्य में मिलाने पर आपत्ति तो करते हैं पर वह अपनी इस आपत्ति को ऐसे रूप में व्यक्त करते हैं जो अवसरवादियों के लिए सबसे अधिक स्वीकार्य तथा सबसे कम आपत्तिजनक हो। वह जर्मन पाठकों को संबोधित करते हैं, पर सबसे सामयिक तथा सबसे महत्वपूर्ण बात पर परदा डाल देते हैं, उदाहरण के लिए, जर्मनी का अलसेस-लोरेन को अपने राज्य में मिला लेना। कौत्स्की के इस "मानसिक विकार" का मूल्यांकन करने के लिए हम निम्नलिखित उदाहरण लेंगे। मान लीजिये, कोई जापानी फ़िलिपाइन पर अमरीका के आधिपत्य की निंदा कर रहा है। सवाल यह है: क्या बहुत-से लोग इस बात पर विश्वास करेंगे कि वह केवल इसलिए ऐसा कर रहा है कि उसे इस बात से नफ़रत है कि कोई किसी दूसरे के इलाक़े पर आधिपत्य जमाये, और इसलिए नहीं कि वह स्वयं फ़िलिपाइन को अपने

---

* "वित्तीय पूंजी", पृष्ठ ४८७।

राज्य में मिलाना चाहता है? और क्या हम इस बात को मानने पर मजबूर नहीं होंगे कि वह जापानी दूसरों के इलाक़े को अपने राज्य में मिलाने के खिलाफ़ जो "संघर्ष" कर रहा है उसे सच्चा और राजनीतिक दृष्टि से ईमानदार तभी समझा जा सकता है जब वह कोरिया पर जापान के आधिपत्य के खिलाफ़ भी लड़े और यह मांग करे कि कोरिया को जापान से अलग हो जाने की आज़ादी हो?

कौत्स्की का साम्राज्यवाद का सैद्धांतिक विश्लेषण और उनकी साम्राज्यवाद की आर्थिक तथा राजनीतिक आलोचना दोनों ही की **नस-नस में** साम्राज्यवाद के आधारभूत विरोधों पर परदा डालने तथा उन्हें टाल जाने की एक ऐसी भावना और यूरोप के मज़दूर वर्ग के आंदोलन में अवसरवाद के साथ छिन्न-भिन्न होती हुई एकता को हर क़ीमत पर सुरक्षित रखने की एक ऐसी चेष्टा समायी हुई है जिसका मार्क्सवाद के साथ कभी मेल नहीं बैठ सकता।

१०. इतिहास में साम्राज्यवाद का स्थान

हम देख चुके हैं कि सारतः साम्राज्यवाद इजारेदार पूंजीवाद है। यह बात स्वयं इतिहास में उसके स्थान को निर्धारित करती है क्योंकि इजारेदारी, जो खुली प्रतियोगिता की भूमि पर, और खुली प्रतियोगिता से ही पैदा होती है, वह पूंजीवादी व्यवस्था से एक उच्चतर सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में संक्रमण की द्योतक है। हमें इजारेदारी के चार मुख्य स्वरूपों को, या इजारेदार पूंजीवाद की उन चार मुख्य अभिव्यक्तियों को विशेष रूप से दृष्टिगत रखना चाहिए जो विचाराधीन युग की लाक्षणिकताएं हैं।

पहली बात, इजारेदारी उत्पादन के संकेंद्रण के विकास की एक बहुत ऊंची अवस्था में जाकर उत्पन्न हुई। इसका संबंध इजारेदार

पूंजीवादी संघों, कार्टेलों, सिंडीकेटों तथा ट्रस्टों से है। हम देख चुके हैं कि इनकी वर्तमान आर्थिक जीवन में कितनी महत्वपूर्ण भूमिका है। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में इजारेदारियों ने उन्नत देशों में अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर लिया था और यद्यपि कार्टेलों के संगठन की दिशा में पहले क़दम सबसे पहले उन देशों में उठाये गये जिन्हें ऊंचे महसूलों का संरक्षण प्राप्त था (जर्मनी, अमरीका), पर ग्रेट ब्रिटेन में भी, जहां खुले व्यापार की पद्धति प्रचलित थी, यही मूलभूत घटना देखने में आयी, अलबत्ता कुछ बाद में, अर्थात् उत्पादन के संकेंद्रण से इजारेदारी का जन्म।

दूसरी बात, इजारेदारियों न कच्चे माल के सबसे महत्वपूर्ण स्रोतों पर, विशेष रूप से पूंजीवादी समाज के अंतर्गत सबसे अधिक हद तक कार्टेलों में संगठित उद्योगों के – कोयले तथा लोहे के उद्योगों के – कच्चे माल के स्रोतों पर क़ब्ज़ा कर लेने को प्रोत्साहन दिया है। कच्चे माल के सबसे महत्वपूर्ण स्रोतों की इजारेदारी ने बड़ी पूंजी की ताक़त को बेहद बढ़ा दिया है और कार्टेलों में संगठित उद्योगों तथा उन उद्योगों के पारस्परिक विरोधों को बहुत उग्र रूप दे दिया है जो कार्टेलों में संगठित नहीं हैं।

तीसरी बात, इजारेदारी बैंकों से उत्पन्न हुई है। बैंक बिचवानी करनेवाले छोटे-मोटे कारोबारों से बढ़कर वित्तीय पूंजी के इजारेदार बन गये हैं। प्रमुखतम पूंजीवादी देशों में से प्रत्येक में तीन से पांच तक सबसे बड़े बैंकों ने औद्योगिक तथा बैंकों की पूंजी के बीच "वैयक्तिक एका" स्थापित कर लिया है और अरबों की रक़म का नियंत्रण अपने हाथ में संकेंद्रित कर लिया है; यह रक़म पूरे के पूरे देश की पूंजी तथा आय का अधिकांश भाग है। इस इजारेदारी की सबसे ज्वलंत अभिव्यक्ति वित्तीय अल्पतंत्र है, जो बिना किसी अपवाद के आधुनिक

पूंजीवादी समाज की सभी आर्थिक तथा राजनीतिक संस्थाओं पर निर्भरता के संबंधों का एक घना जाल डाल देता है।

चौथी बात, इजारेदारी औपनिवेशिक नीति से उत्पन्न हुई है। औपनिवेशिक नीति के अनेक "पुराने" उद्देश्यों के साथ वित्तीय पूंजी ने कच्चे माल के स्रोतों के लिए, पूंजी के निर्यात के लिए, "प्रभाव क्षेत्रों" के लिए, अर्थात् ऐसे क्षेत्रों के लिए जहां लाभप्रद सौदे किये जा सकें, रिआयतें हासिल की जा सकें, इजारेदारी मुनाफ़ा कमाया जा सके आदि, और अंततः आम तौर पर आर्थिक दृष्टि से उपयोगी इलाक़ों के लिए संघर्ष और जोड़ दिया है। जिस समय अफ़्रीका में यूरोपीय ताक़तों के उपनिवेश, उदाहरण के लिए, वहां के कुल क्षेत्र के लगभग दसवें भाग के बराबर थे (जैसी परिस्थिति कि १८७६ में थी), उस समय औपनिवेशिक नीति इजारेदारी के तरीक़ों से नहीं, वरन् अन्य तरीक़ों से – एक प्रकार से, इलाक़ों को "बेरोकटोक हथिया लेने" के तरीक़ों से – विकसित हो सकती थी। परन्तु जब अफ़्रीका के नव्वे प्रतिशत भाग पर (१६०० तक) क़ब्ज़ा कर लिया गया, जब सारी दुनिया का बंटवारा हो गया, तब अनिवार्य रूप से उपनिवेशों पर इजारेदार स्वामित्व के युग का, और फलस्वरूप दुनिया के विभाजन तथा पुनर्विभाजन के लिए विशेष रूप से भीषण संघर्ष के युग का श्रीगणेश हुआ।

यह बात सर्वविदित है कि इजारेदार पूंजी ने पूंजीवाद के अन्तर्विरोधों को कितना गहरा बना दिया है। महंगाई तथा कार्टेलों के अत्याचारों का ही उल्लेख कर देना काफ़ी है। विरोधों का इस प्रकार उग्र होना इतिहास के उस संक्रमणकालीन युग की सबसे प्रबल प्रेरक-शक्ति है, जो विश्वव्यापी वित्तीय पूंजी की अंतिम विजय के समय से आरंभ हुआ।

इजारेदारियों, अल्पतंत्र, स्वतंत्रता के बजाय प्रभुत्व की चेष्टा, मुट्ठी-भर सबसे धनवान तथा सबसे ताक़तवर राष्ट्रों द्वारा बढ़ती हुई

संख्या में छोटे या कमज़ोर राष्ट्रों का शोषण—इन तमाम बातों ने साम्राज्यवाद की उन लाक्षणिक विशेषताओं को जन्म दिया है जिनके कारण हमें उसको परजीवी अथवा ह्रासोन्मुख पूंजीवाद कहने पर विवश होना पड़ता है। साम्राज्यवाद की एक प्रवृत्ति के रूप में उस "सूदख़ोर राज्य", महाजन राज्य का निर्माण दिन प्रति दिन ज़्यादा उभरकर सामने आता है, जिसमें पूंजीपति वर्ग निरंतर बढ़ती हुई हद तक पूंजी के निर्यात से होनेवाली आय पर और "कूपन काटकर" जीवित रहता है। यह समझना भूल होगी कि ह्रास की इस प्रवृत्ति का मतलब यह है कि पूंजीवाद का तीव्र गति से विकास असंभव है। ऐसा नहीं होता। साम्राज्यवाद के युग में उद्योगों की कुछ शाखाएं, पूंजीपति वर्ग के कुछ स्तर और कुछ देश, कम या ज़्यादा हद तक, इन प्रवृत्तियों में से कभी एक और कभी दूसरी का परिचय देते हैं। कुल मिलाकर, पूंजीवाद का विकास पहले की अपेक्षा बहुत तेज़ी से हो रहा है; परन्तु न केवल यह विकास आम तौर पर अधिकाधिक असमान होता जा रहा है बल्कि यह भी हो रहा है कि यह असमानता विशेष रूप से उन देशों के ह्रास में व्यक्त होती है जो पूंजी के मामले में सबसे धनी हैं (इंगलैंड)।

जर्मनी के आर्थिक विकास की तीव्र गति के बारे में रीसेर, जिन्होंने जर्मनी के बड़े-बड़े बैंकों पर एक पुस्तक लिखी है, कहते हैं: "पिछले काल (१८४८-७०) की प्रगति, जिसे धीमी कहना सर्वथा उपयुक्त न होगा, इस काल (१८७०-१९०५) के दौरान में जर्मनी के पूरे राष्ट्रीय अर्थतंत्र की और उसके साथ जर्मनी के बैंकों के कारोबार की प्रगति के वेग की तुलना में उतनी ही धीमी थी जितनी कि पुराने ज़माने की डाक ले जानेवाली घोड़ागाड़ियां आजकल की मोटरों के मुक़ाबले में धीमी होती थीं... आजकल की मोटर इतनी तेज़ी से सरपट भागी जा रही है कि उससे न केवल उसके रास्ते के निर्दोष पैदल

चलनेवालों के लिए बल्कि मोटर पर बैठे हुए लोगों के लिए भी ख़तरा पैदा हो गया है।" और फिर वित्तीय पूंजी को भी, जो इतने असाधारण वेग से बढ़ी है, उपनिवेशों पर अधिक "शांतिमय" स्वामित्व की हालत में पहुंच जाने में कोई आनाकानी नहीं है, जिन उपनिवेशों को अधिक समृद्ध राष्ट्रों से छीनना पड़ेगा—और वह भी केवल शांतिपूर्ण तरीक़ों से नहीं; उसकी इस तत्परता का कारण यही है कि वह इतनी तेज़ी से बढ़ी है। संयुक्त राज्य अमरीका में पिछले कुछ दशकों में आर्थिक विकास जर्मनी से भी ज़्यादा तेज़ी से हुआ है, और **यही कारण** है कि आधुनिक अमरीकी पूंजीवाद की परजीवी विशेषताएं विशेष रूप से उभरकर सामने आयी हैं। दूसरी ओर, मिसाल के लिए, गणतांत्रिक अमरीकी पूंजीपति वर्ग की तुलना जापानी या जर्मन राजतांत्रिक पूंजीपति वर्ग के साथ करने से पता चलता है कि साम्राज्यवाद के युग में तीव्र से तीव्र राजनीतिक भेद भी बेहद कम हो जाता है—इस कारण नहीं कि इस भेद का आम तौर पर कोई महत्व नहीं होता बल्कि इसलिए कि इन सभी दृष्टांतों में हम एक ऐसे पूंजीपति वर्ग पर विचार कर रहे हैं जिसमें परजीविता की निश्चित विशेषताएं पायी जाती हैं।

उद्योग की विभिन्न शाखाओं में से किसी एक शाखा में, अनेक देशों में से किसी एक देश आदि में पूंजीपति जो बहुत ऊंचा इजारेदारी मुनाफ़ा कमाते हैं उससे उनके लिए आर्थिक दृष्टि से यह संभव हो जाता है कि वे मज़दूरों के कुछ हिस्सों को, और कुछ समय तक उनके काफ़ी बड़े अल्पमत को, रिश्वत दे सकें और उन्हें अन्य सभी उद्योगों अथवा राष्ट्रों के खिलाफ़ किसी एक उद्योग विशेष या राष्ट्र विशेष के पूंजीपति वर्ग की तरफ़ मिला लें। दुनिया के बंटवारे के लिए साम्राज्यवादी राष्ट्रों के बीच विरोधों के उग्र होते जाने के कारण यह चेष्टा और बढ़ती है। और इस प्रकार साम्राज्यवाद तथा अवसरवाद के बीच वह

संबंध पैदा होता है जो सबसे पहले और सबसे स्पष्ट रूप से इंगलैंड में इसलिए प्रकट हुआ कि वहां अन्य देशों की तुलना में साम्राज्यवादी विकास की कुछ विशेषताएं बहुत पहले ही दिखायी देने लगी थीं। कुछ लेखक, जैसे उदाहरण के लिए ल० मारतोव, "सरकारी आशावादिता" (कौत्स्की तथा हाइज़मैंस के ढंग की) का सहारा लेकर साम्राज्यवाद और मज़दूर वर्ग के आंदोलन में पाये जानेवाले अवसरवाद के पारस्परिक संबंध को—जो इस समय एक बहुत ही ज्वलंत तथ्य बन गया है—टाल जाने की कोशिश करते हैं। इस "सरकारी आशावादिता" का एक नमूना यह है: यदि प्रगतिशील पूंजीवाद के कारण ही अवसरवाद में वृद्धि होती या यदि ऐसा होता कि सबसे अच्छा वेतन पानेवाले मज़दूरों का ही झुकाव अवसरवाद की ओर होता, तो पूंजीवाद के विरोधियों के ध्येय की पूर्ति की कोई आशा नहीं रह जाती, आदि। हमें इस प्रकार की "आशावादिता" के बारे में किसी प्रकार के सुखद-भ्रम में नहीं रहना चाहिए। यह अवसरवाद के संबंध में आशावादिता है, यह वह आशावादिता है जो अवसरवाद को छुपाने का काम करती है। सच तो यह है कि अवसरवाद के विकास की असाधारण तीव्र गति और उसका विशेषतः घृणास्पद स्वरूप इस बात का कोई गारंटी नहीं है कि उसकी विजय स्थायी होगी: स्वस्थ शरीर पर किसी घातक फोड़े की तीव्र वृद्धि का परिणाम केवल यह हो सकता है कि वह फोड़ा जल्दी फूट जाये और शरीर उसकी पीड़ा से मुक्त हो जाये। इस सिलसिले में सबसे ख़तरनाक वे लोग होते हैं जो इस बात को समझना नहीं चाहते कि साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई उस समय तक एक ढोंग और निरर्थक बात है जब तक उसका संबंध अभिन्न रूप से अवसरवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई के साथ न हो।

इस पुस्तक में साम्राज्यवाद के आर्थिक सार के बारे में जो कुछ भी कहा गया है उससे यही नतीजा निकलता है कि हमें उसकी परिभाषा

यह करना चाहिए कि वह संक्रमण की अवस्था में पूंजीवाद है, या यह कहना अधिक उचित होगा कि वह मरणोन्मुख पूंजीवाद है। इस संबंध में इस बात को ध्यान में रखना बहुत शिक्षाप्रद होगा कि पूंजीवादी अर्थशास्त्री आधुनिक पूंजीवाद का वर्णन करते समय इस प्रकार के आकर्षक शब्दों तथा फ़िकरों का इस्तेमाल करते हैं जैसे "परस्पर गुंथ जाना", "पार्थक्य का अभाव", आदि; "अपने कामों तथा विकासक्रम के अनुकूल" बैंक "शुद्धतः निजी व्यापार के कारोबार नहीं" होते हैं, "वे शुद्धतः निजी व्यापार के नियमन के क्षेत्र से अधिकाधिक बाहर निकलते जा रहे हैं"। और यही रीसेर साहब, जिनके शब्दों को हमने अभी ऊपर उद्धृत किया है बड़ी गंभीरता के साथ घोषणा करते हैं कि "समाजीकरण" के बारे में मार्क्सवादियों की "भविष्यवाणी" "सही नहीं साबित हुई है"!

फिर इन आकर्षक शब्दों "परस्पर गुंथ जाने" का क्या अर्थ है? वे केवल उस प्रक्रिया की सबसे ज्वलंत विशेषता को अभिव्यक्त करते हैं जो हमारी आंखों के सामने हो रही है। इनका मतलब यह है कि देखनेवाला अलग-अलग पेड़ों को तो गिन लेता है पर वह जंगल को नहीं देख पाता। इन शब्दों में सतही, संयोगवश तथा अव्यवस्थित ढंग से होनेवाली बातों को हूबहू नक़ल कर दिया गया है। ये शब्द इस बात का रहस्योद्घाटन करते हैं कि अवलोकन करनेवाला एक ऐसा व्यक्ति है जो आधार-सामग्री की विपुलता को देखकर घबरा गया है पर वह उसके अर्थ तथा महत्व को समझने में सर्वथा असमर्थ है। शेयरों का स्वामित्व और निजी सम्पत्ति के मालिकों के पारस्परिक संबंध "ऊटपटांग ढंग से परस्पर गुंथ जाते हैं"। परन्तु इस गुंथाव की बुनियाद में, स्वयं उसका आधार, उत्पादन के बदलते हुए सामाजिक संबंध हैं। जब कोई बड़ा कारोबार अति विशाल रूप धारण कर लेता है और विपुल तथ्य-सामग्री का सही-सही हिसाब लगाने के आधार पर मूलभूत कच्चे माल के संभरण

को इस प्रकार एक योजना के अनुसार संगठित करता है कि करोड़ों लोगों की कुल जितनी आवश्यकता है उसका दो-तिहाई या तीन-चौथाई भाग तक ही उन्हें मिल सके; जब कच्चा माल एक सुव्यवस्थित तथा संगठित ढंग से उत्पादन के लिए सबसे उपयुक्त स्थानों को, कभी-कभी तो सैकड़ों या हज़ारों मील दूर भी, भेजा जाता है; जब अनेक प्रकार का तैयार माल बनाने तक की सारी क्रमिक अवस्थाओं का निर्देशन एक ही केंद्र से किया जाता है; जब ये चीज़ें एक ही योजना के अनुसार करोड़ों उपभोक्ताओं के बीच वितरित की जाती हैं (अमरीकी "तेल ट्रस्ट" द्वारा अमरीका तथा जर्मनी में तेल का वितरण)—तब यह स्पष्ट हो जाता है कि चीज़ें "परस्पर गुंथ" ही नहीं गयी हैं बल्कि उत्पादन का "समाजीकरण" भी हो गया है। यह स्पष्ट हो जाता है कि निजी आर्थिक संबंध तथा निजी सम्पत्ति के संबंध एक ऐसा खोल बन गये हैं जिसके अंदर की सामग्री अब उसमें नहीं समाती, एक ऐसा खोल बन गये हैं जिसके विनाश को कृत्रिम उपायों द्वारा रोकने की कोशिश की गयी तो अवश्य ही उसका क्षय हो जायेगा; एक ऐसा खोल जो काफ़ी दीर्घकाल तक क्षय की दशा में रह सकता है (यदि हम हद से ज़्यादा यह भी मान लें कि अवसरवादी फोड़े का इलाज बहुत लम्बा खिंचेगा), परन्तु इस खोल को अनिवार्य रूप से हटाना पड़ेगा।

जर्मन साम्राज्यवाद के उत्साही प्रशंसक शुल्ज़े-गैवर्नित्ज़ जोश के साथ कहते हैं:

"एक बार जर्मन बैंकों की सर्वोच्च व्यवस्था एक दर्जन लोगों के हाथों में सौंप दिये जाने के बाद भी आज उनका काम सार्वजनिक हित की दृष्टि से अधिकांश राज्य-मंत्रियों के काम की अपेक्षा अधिक महत्व रखता है।" (यहां पर बैंकपतियों, मंत्रियों, उद्योगपतियों तथा सूदख़ोरों के "परस्पर गुंथ जाने" को बड़ी आसानी से भुला दिया गया

है . . .) . . . "जिन प्रवृत्तियों का हमने उल्लेख किया है यदि उनकी कल्पना हम उनके विकास की परिणति के रूप में करें तो हम देखेंगे कि : राष्ट्र की सारी द्रव्य पूंजी बैंकों में एकबद्ध हो गयी है ; बैंकों ने स्वयं मिलकर कार्टेलों का रूप धारण कर लिया है ; राष्ट्र की कारोबार में लगायी जानेवाली पूंजी प्रतिभूतियों के रूप में ढल गयी है। तब उस मेधावी पुरुष सेंट-साइमन की भविष्यवाणी पूरी हो जायेगी : 'उत्पादन की वर्तमान अराजकता को, जो इस बात के सर्वथा अनुकूल है कि आर्थिक संबंध बिना किसी एकरूप नियमन के विकसित हो रहे हैं, उत्पादन में संगठन के लिए जगह खाली करनी पड़ेगी। तब उत्पादन का निर्देशन उन अलग-अलग उत्पादकों के हाथ में नहीं रह जायेगा, जो एक-दूसरे से स्वतंत्र होते हैं और जिन्हें मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओं का कोई ज्ञान नहीं होता ; यह काम किसी सार्वजनिक संस्था के हाथों में होगा। केंद्रीय व्यवस्थापन समिति, जो सामाजिक अर्थतंत्र के विस्तृत क्षेत्र का सर्वेक्षण ज्यादा ऊंचाई से कर सकेगी, वह उस अर्थतंत्र का नियमन पूरे समाज के हित में करेगी, वह उत्पादन के साधन उचित हाथों में सौंप देगी, और सबसे बढ़कर वह इस बात का ध्यान रखेगी कि पैदावार तथा खपत के बीच निरंतर एक सामंजस्य रहे। इस प्रकार की संस्थाएं इस समय भी मौजूद हैं जिन्होंने आर्थिक श्रम के संगठन को कुछ हद तक अपने काम के एक हिस्से के रूप में अंगीकार कर लिया है : ये संस्थाएं बैंक हैं।' हम सेंट-साइमन की भविष्यवाणी के पूरा होने से अभी बहुत दूर हैं पर हम उसकी दिशा में आगे बढ़ रहे हैं : यह मार्क्सवाद है, मार्क्स ने जिस रूप में उसकी कल्पना की थी उससे भिन्न, पर केवल रूप में ही भिन्न।"*

---

* *Grundriss der Sozialökonomik* (सामाजिक अर्थशास्त्र के सिद्धांत—अनु०), पृष्ठ १४६।

सचमुच, यह मार्क्स का ज़बर्दस्त "खंडन" है, जो मार्क्स के नपे-तुले वैज्ञानिक विश्लेषण से एक क़दम पीछे हटकर सेंट-साइमन की अटकलबाज़ी की शरण लेता है, वह एक मेधावी पुरुष की अटकलबाज़ी ही सही, पर है तो अटकलबाज़ी ही।

लेखन-काल: जनवरी – जून १६१६।

मूलतः पुस्तिका के रूप में पेत्रोग्राद से अप्रैल १६१७ में प्रकाशित हुई

व्ला० इ० लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, चौथा रूसी संस्करण, खंड २२, पृष्ठ १७३-२६०

टिप्पणियां

[1] "**साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की चरम अवस्था**" शीर्षक पुस्तक १६१६ के पूर्वार्द्ध में लिखी गयी थी। बर्न में रहते हुए, १६१५ में ही लेनिन ने साम्राज्यवाद सम्बन्धी साहित्य का अध्ययन और जनवरी १६१६ में उक्त पुस्तक का लेखन आरंभ किया था। उस वर्ष जनवरी के अन्त में लेनिन ज़ूरिच में रहने चले गये और ज़ूरिच प्रादेशिक पुस्तकालय में पुस्तक सम्बन्धी काम जारी रखा। लेनिन ने सैकड़ों विदेशी पुस्तकों, पत्रिकाओं, समाचारपत्रों और सांख्यिकीय संकलनों से जो उद्धरण, सारांश, टिप्पणियां और सारणियां संगृहीत कीं वे पुस्तक के चालीस फ़र्मों से अधिक हैं। यह सामग्री १६३६ में पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई। पुस्तक का शीर्षक था: "साम्राज्यवाद सम्बन्धी नोटबुकें"।

१६ जून (२ जुलाई) १६१६ के दिन लेनिन ने पुस्तक का लेखन समाप्त किया और पाण्डुलिपि 'पारुस' (पाल) पब्लिशर्स के पास भेज दी। इस प्रकाशन गृह में काम करनेवाले मेन्शेविक तत्त्वों ने कौत्स्की और रूसी मेन्शेविकों (मारतोव आदि) की कड़ी आलोचना करनेवाले हिस्से पुस्तक में से हटा दिये। लेनिन ने जहां (पूंजीवाद की पूंजीवादी साम्राज्यवाद में) "वृद्धि" शब्द लिखा था, उन्होंने उसके बदले

"रूपान्तर" कर दिया, ("अति-साम्राज्यवाद" के सिद्धान्त के) "प्रतिक्रियावादी स्वरूप" के स्थान में "पिछड़ा स्वरूप" रख दिया, इत्यादि। 'पारुस' पब्लिशर्स ने यह पुस्तक "पूंजीवाद की नवीनतम अवस्था के रूप में साम्राज्यवाद" शीर्षक के साथ १९१७ के आरंभ में पेत्रोग्राद में प्रकाशित की।

रूस लौट आने पर लेनिन ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी। १९१७ के मध्य में पुस्तक प्रकाशित हुई।

मुखपृष्ठ

[2] यह भूमिका प्रथम बार अक्तूबर १९२१ में "कम्युनिस्ट इंटरनेशनल" पत्रिका की १८ वीं संख्या में "साम्राज्यवाद और पूंजीवाद" शीर्षक के साथ प्रकाशित हुई।

पृष्ठ ७

[3] प्रस्तुत संस्करण में यह घोषणापत्र शामिल नहीं है।

पृष्ठ ११

[4] **"जर्मनी की स्वतन्त्र सामाजिक-जनवादी पार्टी"** — अप्रैल १९१७ में स्थापित सेंट्रिस्ट पार्टी। इस पार्टी का मुख्य अंग कौत्स्की पंथीय "श्रमिक सभा" संगठन था। इन "स्वतन्त्रवादियों" ने स्पष्ट सामाजिक-अंधराष्ट्रवादियों के साथ "एकता" का प्रचार किया, उनका समर्थन और बचाव किया, और वर्ग संघर्ष के त्याग की मांग की।

अक्तूबर १९२० में हाल्ले में स्वतन्त्र सामाजिक-जनवादी पार्टी की कांग्रेस में फूट पड़ी। दिसंबर १९२० में इस पार्टी का काफ़ी हिस्सा जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी के साथ मिल गया। दक्षिण पंथियों ने एक अलग पार्टी स्थापित की और स्वतन्त्र सामाजिक-जनवादी पार्टी वाला पुराना नाम धारण किया। यह पार्टी १९२२ तक बनी रही।

पृष्ठ १२

[5] **स्पर्टकवादी** – प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान स्थापित "स्पर्टक" लीग के सदस्य। युद्ध के आरंभ में जर्मन वामपंथी सामाजिक-जनवादियों ने क० लीब्कनेख़्त, रोज़ा लुक्ज़ेम्बुर्ग, फ़० मेहरिंग, क्लारा ज़ेत्किन इत्यादि के नेतृत्व में "इन्टरनेशनल" समूह की स्थापना की। यह समूह भी अपने को "स्पर्टक" लीग कहलाने लगा। स्पर्टकवादियों ने जनता में साम्राज्यवादी युद्ध के विरुद्ध क्रान्तिकारी प्रचार जारी रखा, और जर्मन साम्राज्यवाद की विस्तारवादी नीति और सामाजिक-जनवादी नेताओं की ग़द्दारी का पर्दाफ़ाश कर दिया। पर स्पर्टकवादी यानी जर्मन वामपंथी लोग सिद्धान्त और नीति की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण समस्याओं तक के विषय में अपनी अर्द्ध-मेन्शेविक भ्रान्तियों से छुटकारा न पा सके : उन्होंने साम्राज्यवाद का अर्द्ध-मेन्शेविक सिद्धान्त विकसित किया, मार्क्सवादी अर्थ में (अर्थात् पृथक् होने एवं स्वाधीन राज्य स्थापित करने सहित) राष्ट्रों के आत्म-निर्णय के अधिकार का सिद्धान्त अस्वीकार किया, साम्राज्यवादी युग में राष्ट्रीय स्वतंत्रता युद्धों की सम्भावनाओं से इन्कार किया, क्रान्तिकारी पार्टी का कम मूल्य आंका और आन्दोलन की स्वतःस्फूर्ति के आगे सिर झुका दिया। जर्मन वामपंथियों की ग़लतियों की आलोचना व्ला० इ० लेनिन कृत "जूनियस पैम्फ़्लेट", "मार्क्सवाद का व्यंग-चित्र तथा 'साम्राज्यवादी अर्थवाद'" और अन्य लेखों में शामिल है। १९१७ में स्पर्टकवादियों ने "स्वतन्त्रवादियों" की सेंट्रिस्ट पार्टी से हाथ मिलाया पर अपनी संगठनात्मक स्वाधीनता क़ायम रखी। नवंबर १९१८ में जर्मनी की क्रान्ति के बाद स्पर्टकवादियों ने "स्वतन्त्रवादियों" से विदा ली और उसी वर्ष के दिसंबर में जर्मनी कम्युनिस्ट पार्टी की नींव रखी।

पृष्ठ १३

[6] प्रस्तुत संस्करण में लेखक की सभी टिप्पणियां और हवाले पद-टिप्पणियों के रूप में दिये गये हैं।

पृष्ठ १६

[7] **कंपनियां खड़ी करने की शर्मनाक घटनाएं** जर्मनी में पिछली शताब्दी के आठवें **दशक** के आरम्भ में बहुत बड़े पैमाने पर ज्वाइंट स्टाक कंपनियों की स्थापना की अवधि में पैदा हुई थीं। इन कंपनियों की स्थापना के साथ-साथ ठगी के मामलों की भी बाढ़ आयी जिसके सहारे पूंजीवादी व्यापारी कारोबारियों ने काफ़ी धन बटोर लिया। इसके अलावा ज़मीन और साख-पत्रों के बारे में बेहद सट्टेबाज़ी हुई।

पृष्ठ ५१

[8] लेनिन का अभिप्राय यहां ग० व० प्लेख़ानोव से है।

पृष्ठ ६५

[9] **फ़्रांसीसी पनामा** – फ़्रांसीसी पनामा नहर कंपनी द्वारा घूस दिये गये राजनीतिज्ञों, अधिकारियों और समाचारपत्रों की धोखेबाज़ी और भ्रष्टाचार का १८९२-१८९३ में पर्दाफ़ाश हो जाने के बाद यह शब्द-संहति बहुत प्रचलित हुई।

पृष्ठ ७९

[10] "**फ़ेबियन सोसायटी**" – इंगलैंड में १८८४ में पूंजीवादी बुद्धिजीवियों के एक समूह द्वारा स्थापित सुधारवादी और अत्यन्त अवसरवादी सोसायटी। फ़ेबियनों के स्वभाव-चित्रण "'इ० फ़० बेकर, ज० दियेत्ज़गेन, फ़्रे० एंगेल्स, का० मार्क्स इत्यादि के पत्र फ़० अ० सोर्गे आदि के नाम' के रूसी संस्करण की भूमिका", "रूसी क्रान्ति में सामाजिक-जनवादियों का कृषि-संबंधी कार्यक्रम", "अंग्रेज़ों का शान्तिवाद और सिद्धांतों के प्रति अंग्रेज़ों की अरुचि" इत्यादि लेनिन कृत रचनाओं में देखिये।

पृष्ठ १५५

[11] **स्पेक्तातोर** – मेन्शेविक स० म० नख़िमसोन।

पृष्ठ १६०

[12] **बाक्सर विद्रोह**—लेनिन का अभिप्राय यहां १९०० में विदेशी साम्राज्यवादियों के शासन के विरुद्ध चीनी जनता के प्रथम इ हो तुआन विद्रोह से है। जर्मन जेनरल वाल्देरसी के कमान के मातहत साम्राज्यवादी सत्ताओं की संयुक्त सैनिक टुकड़ियों ने यह विद्रोह निर्दयता से कुचल डाला। १९०१ में चीन को तथाकथित "सन्धिपत्र के अन्तिम प्रारूप" पर हस्ताक्षर करने पर मजबूर किया गया। इस सन्धिपत्र के अनुसार चीन पर भारी मुआवज़ा लादा गया और उसे पूरी तरह विदेशी साम्राज्यवाद के अर्द्ध-उपनिवेश में परिवर्तित किया गया।

पष्ठ १७१

लेनिन की रचनाएं हिन्दी भाषा में

निम्नलिखित पुस्तकें अवश्य पढ़ें:

व्ला० इ० लेनिन, **पूर्व में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-आन्दोलन,** विविध लेख संग्रह, पृष्ठ संख्या ४६४।

एशिया के निवासी करोड़ों लोगों का "हमारे चरण-चिह्नों पर चलकर निकट भविष्य में ऐतिहासिक रंगमंच पर आगे आना" सुनिश्चित है, यह लेनिन की भविष्यवाणी आज हमारे सामने साकार हो चुकी है। इस संग्रह में संकलित लेखों से स्पष्ट होता है कि लेनिन कितने ग़ौर से और कितनी सहानुभूति के साथ पूर्व के जागरण और चीन, भारत, इण्डोनेशिया, मिस्र और एशिया तथा अफ़्रीका के अन्य देशों के उपनिवेशवाद-विरोधी वीरतापूर्ण संघर्ष की ओर देखते थे। इस पुस्तक का सूत्र यह विचार है कि हर जनता को अपने भाग्य निर्णय का अधिकार मिलना चाहिए। सन् १९१७–१९२३ में लिखे गये लेख इस बात का विशद उदाहरण हैं कि सोवियत देश की जनताओं ने किस प्रकार इस विचार को साकार किया।

आकार १३×२० सेंटीमीटर, कपड़े की जिल्द।
मूल्य १ रु. १९ न. पै.

व्ला० इ० लेनिन, **'मार्क्सवाद के ऐतिहासिक विकास की कुछ विशेषतायें'**, पृष्ठ संख्या ७८।

इस संग्रह में उपरोक्त लेख के अतिरिक्त एक अन्य लेख: 'मार्क्सवाद के तीन स्रोत और तीन निर्माण-तन्तु' भी शामिल है।

इन लेखों में मार्क्सवाद के मूल तत्त्वों (दर्शनशास्त्र, आर्थिक सिद्धान्त तथा वैज्ञानिक समाजवाद) तथा मार्क्सवाद के विकास के इतिहास की बड़ी स्पष्टता तथा संक्षेप में व्याख्या की गई है। मार्क्सवाद की मूल धारणाएं क्या हैं, तथा उसकी सर्व-विजयी शक्ति का स्रोत क्या है—इनसे परिचय प्राप्त करने के लिए यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। इन लेखों में लेनिन ने इन प्रश्नों का भी समाधान किया है कि सिद्धान्त तथा व्यवहार के आपसी सम्बन्ध क्या होने चाहिएं तथा मजदूर वर्ग की पार्टी की नीति के वैज्ञानिक आधार क्या हैं।

आकार १३×२० सेंटीमीटर।
मूल्य १२ न. पै.

व्ला० इ० लेनिन, **'राष्ट्रों का आत्म-निर्णय का अधिकार'**, पृष्ठ संख्या १०३।

इस पुस्तक में लेनिन ने रूस के मेन्शेवीक-विसर्जनवादियों, पोलैंड तथा उक्रइन के राष्ट्रवादियों, बुन्दवादियों तथा अन्य अवसरवादियों की कड़ी आलोचना की है। इन लोगों ने राष्ट्रीय प्रश्न को सुलझाने के मार्क्सवादी प्रोग्राम का, और विशेषकर उसके बुनियादी सिद्धान्त—राष्ट्रों के आत्म-निर्णय के अधिकार—का विरोध किया था।

व्ला० इ० लेनिन ने इसमें उक्त मांग का मूर्त्त-ऐतिहासिक आशय स्पष्ट किया है और मार्क्सवादी पार्टी का राष्ट्रीय कार्यक्रम प्रस्तुत किया है।

व्ला० इ० लेनिन ने सभी राष्ट्रों के समानाधिकारों और स्वयं अपना भाग्य-निर्णय करने के उनके अधिकार का समर्थन किया है।

पुस्तक के अंत में टिप्पणियां दी गयी हैं। पृष्ठ संख्य १०३, आकार १३×२० सेंटीमीटर

मूल्य १२ न. पै.

व्ला० इ० लेनिन, '**सोवियत सत्ता और स्त्रियों की स्थिति। अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस**', लेख संग्रह, पृष्ठ संख्या १३।

ये लेख सोवियत सत्ता की स्थापना के प्रारंभिक काल (१९१९-१९२१) में लिखे गये। जो काम इतिहास की किसी अन्य क्रान्ति द्वारा न हो सका, उसे अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति ने पूर्णतया सम्पन्न कर दिखाया – स्त्रियों के उत्पीड़न तथा क़ानूनी असमानता को पूरी तरह खत्म कर दिया। सोवियत सत्ता के अधीन स्त्रियों को देश के राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन में भाग लेने के सभी अवसर प्राप्त हुए।

पुस्तक के अंत में टिप्पणियां दी गयी हैं। आकार १३×२० सेंटीमीटर।

मूल्य ३ न. पै.

इन किताबों के लिए अपने आर्डर सोवियत पुस्तकें बेचनेवाले भारतीय फ़ार्मों के पास भेजें। सोवियत पुस्तकों की सूचियां भी उन्हीं के ज़रिये प्राप्त की जा सकती हैं।

सोवियत किताबें पढ़िये!